पृथ्वी के अन्वेषण की कथायें



पृथ्वी के अन्वेषण

की

कथायें

लेखक

जगपति चतुर्वेदी, हिन्दी भूषण, विशारद

(रचयिता–समुद्र पर विजय, वायु पर विजय, प्रकृति की पराजय, अद्भुत महापुरुष, आविष्कार की कहानियाँ आदि ।)

प्रकाशक

छात्रहितकारी पुस्तक-माला

दारागंज-प्रयाग

प्रथमावृत्ति } १९३१ { मूल्य १)

प्रकाशक

केदारनाथ गुप्त बी० ए० सी० टी०

प्रोप्राइटर—छात्रहितकारी पुस्तक-माला

दारागंज-प्रयाग

मुद्रक

बजरङ्गबली गुप्त, विशारद

श्रीसीताराम प्रेस, बुलानाला, काशी।

वक्तव्य

आज हमें अपनी पृथ्वी पर के छोटे बड़े सभी देशों का भली भाँति ज्ञान है। आधुनिक विज्ञान के प्रसाद से पृथ्वी की पग-पग भूमि नापी जा चुकी है, लेकिन आज से बहुत पूर्व लोगों को सब देशों का ज्ञान न था। जिन वीर अन्वेषकों के प्रयत्न से हम आज पृथ्वी के सब देशों का ज्ञान रख सकने में समर्थ हो सके हैं उनकी यात्रायें बड़ा महत्व रखती हैं। प्रत्येक गौरवशाली राष्ट्र के युवकों को उन अन्वेषकों के प्रयत्न की कहानियाँ जानना उचित ही नहीं बल्कि नितान्त आवश्यक है जिससे वे भी संसार के ज्ञान भांडार की पूर्ति में योग दे अपने राष्ट्र का मस्तक ऊँचा कर सकें। इस पुस्तक में प्रत्येक समय के प्रत्येक देश के वीर अन्वेषकों की भीषण और रोमांचकारी यात्राओं का उल्लेख करने का प्रयत्न किया गया है।

इस पुस्तक के निर्माण के संबन्ध में मुझे विशेष कुछ कहना नहीं है। अभी हिन्दी में इस विषय पर कोई पुस्तक नहीं है। आज से तीन वर्ष पूर्व मैंने इस विषय पर पहले-पहल 'भौगोलिक कहानियाँ' नाम की पुस्तक लिखी थी, परन्तु वह बहुत कुछ अधूरी थी। उसमें न तो बहुत पूर्व काल के आर्य, फीनीशियन आदि लोगों के अन्वेषणों का ही विशद वर्णन था और न १४ वीं शताब्दी के पश्चात् के आधुनिक अन्वेषकों की ही चर्चा थी। प्रस्तुत पुस्तक में वह सब न्यूनतायें दूर करने का प्रयत्न किया गया है।

दारागंज, प्रयाग
१ फरवरी, १९३१

लेखक

सूची

पृथ्वी के अन्वेषण

की

कथायें



१—भारतीय अन्वेषक



प्राचीन काल में आर्यों का स्वर्ण-युग रह चुका है। उस समय वे ज्ञान-भांडारके भिन्न भिन्न भागों में उन्नति कर चुके थे। उनकी सभ्यता उन्नति की एक सीमा तक पहुँच चुकी थी, उस युग में उन्होंने जितनी उन्नति कर अपने उर्वर मस्तिष्क का परिचय दिया था, उसे बतलाने के लिये आज हमारे पास साधनों का अभाव सा है। उनकी स्मृति के चिह्न नष्टप्राय हो चुके हैं। उनकी विचक्षण बुद्धि के परिचायक सहस्रों ग्रन्थ (आततायियों द्वारा) भस्मीभूत किए जा चुके हैं। फिर भी उनकी कृतियों में से संसार के सब से प्राचीन ग्रन्थ वेदों और अन्य ग्रन्थों से, जो किसी प्रकार अब तक रक्षित रह सके हैं, उनकी बुद्धिमत्ता और उन्नति का आभास मिलता है। ज्ञान के अन्य भांडारों की भाँति

उनके भौगोलिक अन्वेषण के सम्बन्ध में भी हमें इन ग्रन्थों से कुछ जानकारी होती है।

आधुनिक युग में नए नए आविष्कारों की सहायता से संसार के किसी भी कोने में यात्रा कर सकना बड़ा सुगम हो गया है। मनुष्यों ने क्या स्थल-खंड और क्या जल-खंड, इस समस्त पृथ्वी-तल को पग-पग नापने में सफलता प्राप्त करली है, यहाँ तक कि घने हिम से सदा ढके हुए निर्जन ध्रुव प्रदेशों में भी मनुष्य की पहुँच हो सकी है परन्तु आज से कितने ही सहस्र वर्ष पूर्व इन नूतन आविष्कारों का सर्वथा अभाव होने पर भी हमारे पूर्वजों ने इस भूखंड के धुर उत्तर स्थित उत्तरी ध्रुव-खंड का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया था। वेदों में इस हिम-मय प्रदेश का इस प्रकार वर्णन मिलता है कि बिना उसका प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किये उस प्रकार का वर्णन किया ही नहीं जा सकता।

आज के भौगोलिक ज्ञान से हमें इस बात का पता है कि ध्रुव-प्रदेश में किस प्रकार ६ मास का दिन और ६ मास की रात होती है। बिल्कुल ध्रुव के निकट साल भर तक दिन ही दिन वा रात ही रात होती है। सूर्य का प्रकाश न होने पर प्रकृति उस खंड में एक विचित्र प्रकाश का प्रबंध करती है जिसके सौन्दर्य की तुलना किसी अन्य वस्तु से नहीं की सकती। इस मेरु-प्रभा का अस्तित्व ध्रुव-प्रदेशों के अतिरिक्त भूतल पर कहीं भी नहीं है परन्तु वेदों में इसका बड़ा विशद वर्णन मिलता है। हम लोगों के एक साल के बराबर वहाँ पर दिन और रात होने का भी उन

में उल्लेख है। इन सब बातों का बिल्कुल ठाक ठीक वर्णन ध्रुव प्रदेश की पूर्ण जानकारी रक्खे बिना हो ही नहीं सकता परन्तु आर्यों ने इनका वर्णन किया है अतएव हम कह सकते हैं कि वे वहाँ अवश्य पहुँच सके होंगे।

इतिहास-वेत्ता कहते हैं कि आर्य मध्य एशिया के निवासी थे। वहाँ से चल कर वे भारत वर्ष पहुँचे और धीरे धीरे यहाँ के सब प्रान्तों में फैल कर यहीं बस गए। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने आर्यों के आदिम निवासस्थान के संबंध में एक ग्रंथ लिख कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि आर्य उत्तरी ध्रुव-प्रदेश के ही रहने वाले थे और वहाँ से धीरे धीरे दक्षिण की ओर फैले थे। आर्यों के आदि निवासस्थान की चाहे जो बात सत्य हो परन्तु वेदों में ध्रुव-प्रदेश के वर्णन से हमें यह विश्वास हुए बिना नहीं रह सकता कि या तो वे ध्रुव प्रदेश में ही पहले निवास कर अन्य प्रदेशों में फैले थे या मध्य एशिया में आदि काल में निवास कर वे भ्रमण कर उत्तरी ध्रुव प्रदेश तक पहुँच सके थे और उसका यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया था। ध्रुव-प्रदेश में आज भी बर्फ में दबे हुए ऐसे विशालकाय जन्तुओं का भग्नावशेष वा अस्थि-पंजर मिलता है जिनका अब लोप हो चुका है परन्तु उन अस्थिपंजरों से विश्वास होता है कि किसी समय वहाँ जीवधारियों का निवास था। इस कारण प्राचीन काल में वहाँ तक आर्यों के पहुँचने की बात अविश्वासनीय नहीं समझी जा सकती।

यह तो हुई आर्यों के भारत वर्ष में आने से भी पहले की, बहुत दिनों पूर्व आदि काल की बात, परन्तु आर्यों के भारत में बस जाने पर उनकी किन किन देशों तक पहुँच थी, यह एक विवादास्पद प्रश्न है। इस बात का कोई निश्चित रूप से प्रमाण तो नहीं मिलता कि भारतीय आर्य आज से अधिक से अधिक कितने दिनों पूर्व किन किन देशों तक अपनी पहुँच कर सके थे परन्तु इस का हम अनुमान कर सकते हैं। पुरातत्व-वेत्ता संसार के इतिहास में मिस्र और बेबिलन, जो मेसोपोटामिया प्रान्त का प्राचीन नाम था, की सभ्यता को बहुत प्राचीन मानते हैं। मेसोपोटामिया में रहनेवाली मितानी नाम की एक जाति की सीरिया प्रान्त के निकट कोपाडोसिया में रहनेवाली हिटाइट नाम की जाति से एक सन्धि ईसा के १५०० पूर्व हुई थी। उस सन्धिपत्र में आर्यों के देवता इन्द्र, वरुण और मित्र आदि का नाम मिलता है। इससे भारतीय आर्यों का इन देशों तक आवागमन होने का हम भली भाँति अनुमान कर सकते हैं।

बेबिलोनिया फारस की खाड़ी के समीप था, इस कारण वहाँ के निवासियों ने फुरात और दजला नदियों तथा इस खाड़ी में जलयानों को दौड़ाने का प्रयत्न किया। इतिहासवेत्ता-बतलाते हैं कि यहीं के निवासी फीनीशियन लोगों ने पहले पहल जलयानों पर जलखंड पार करने का श्रीगणेश किया था परन्तु भारत वर्ष में भारतीय आर्यों ने सभ्यता के अन्यभागों में आज से सहस्रों वर्ष पूर्व जितनी उन्नति करली थी उसे देख यह विश्वास नहीं

किया जा सकता कि गंगा और सिन्धु जैसी विशाल नदियों के होते हुए भी उन्हों ने नौकाओं का निर्माण न किया होगा। भारतवर्ष में प्रविष्ट होने पर ऋग्वेद में वर्णित ब्रह्मावर्त और ब्रह्मर्षि देश तक पहुँचने के लिए उन्हें सिन्धु नद, पंचनद, सरस्वती, दृषद्वती तथा गंगा ने पग पग पर नौका-निर्माण की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया होगा। इन नदियों को पार कर आगे बढ़ने वा सिन्धु नद के मार्ग दक्षिण जाने पर उनके सम्मुख विशाल भारत महासागर दृष्टिगोचर हुआ होगा। उसे देख कर वे उसकी ओर बढ़ने को अपनी उत्सुकता न रोक सके होंगे। यही कारण है कि हम आज से हज़ारों वर्ष पूर्व भारतीय तट पर समुद्र में जलयानों के दौड़ लगाने का प्रमाण पाते हैं। वेदों में समुद्री जलयानों द्वारा यात्रा का कई स्थान पर उल्लेख है।

भारतीय आर्यों के ये जलयान किन महासागरों की दौड़ लगा सकने में अतीत काल में सफल हुए थे, इसका प्रमाण पा सकना बड़ा कठिन है परन्तु हम इतना कह सकते हैं कि पश्चिम में फारस, अरब, लाल सागर और अफ्रिका तक तथा पूरब में सुमात्रा, जावा, बाली आदि द्वीप और चीन, स्याम, कम्बोडिया तथा जापान तक इनकी अवश्य ही पहुँच रही होगी। फ़ारस की खाड़ी के तट पर स्थित बेबिलोनिया के भग्नावशेषों में बहुत ही प्राचीन काल की एक प्रकार की लकड़ी पाई गई है जो केवल भारतवर्ष में ही समुद्र-तटपर होती थी। वह जलयानों द्वारा ही भारत से वहाँ पहुचाई जा सकती थी इस कारण उसकी प्राचीनता से सिद्ध

होता है कि कम से कम आज से कई सहस्र वर्ष पूर्व भारत वर्ष से उस स्थान तक जलयानों का आवागमन जारी था। पूर्व में जावा द्वीप के निकट बाली द्वीप में आज भी प्राचीन हिन्दू धर्म का प्रसार है और सुमात्रा, जावा आदि द्वीपों और कम्बोडिया में हिन्दू मन्दिरों और देवताओं के चिह्न पाये जाते हैं।

इन स्थानों में संस्कृत में लिखे हुए शिलालेख भी मिले हैं। इन प्रमाणों से ज्ञात होता है कि आर्यों ने अपने जलयानों द्वारा उन स्थानों तक आवागमन ही नहीं जारी रक्खा था प्रत्युत उन्होंने इन स्थानों में अपने उपनिवेश भी स्थापित किए थे। भारत में मुसलमानों के आक्रमण होने के तीन शताब्दियों पश्चात् तक भी इन स्थानों में हिन्दुओं का साम्राज्य था परन्तु मातृभूमि के असहाय होने पर वे विजातियों द्वारा आक्रान्त होकर विनष्ट हो गये।

भारतीय साहित्य में समुद्र-मार्ग द्वारा कितने ही स्थानों तक आर्यों के जाने का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में एक स्थान पर लिखा है कि व्यापारी लोभ के मारे दूसरे देश को जलयान भेजते हैं। उसी में एक दूसरे स्थान पर तुग्र नाम के एक राजर्षि का अपने पुत्र भुज्य को शत्रुओं का सामना करने के लिए भेजने का उल्लेख है जो समुद्र में किसी दूर के द्वीप में रहते थे। भुज्य के सब साथियों के साथ जलयान डूब जाने से आश्विन लोगों ने अपनी सौ डाँड़ों से खेई जाने वाली नौका से उसकी रक्षा की थी। रामायण में सीता को खोजने के लिए सुग्रीव बन्दरों को समुद्री

द्वीप के नगरों और पर्वतों, कोषकार देश (रेशम का देश, चीन) यवन द्वीप (जावा द्वीप) सुवर्ण द्वीप (सुमात्रा) तथा लोहित सागर (लाल सागर) में जाने की आज्ञा देता है।

महाभारत में राजसूय यज्ञ और अर्जुन तथा नकुल के दिग्विजय के वर्णन में बहुत से देशों का नाम आया है जिनसे भारत वर्ष के साथ आवागमन होता था। सभापर्व में पाण्डवों के छोटे भाई सहदेव का समुद्र के बहुत से द्वीपों में जाना और वहाँ के म्लेच्छ निवासियों का विजय करना लिखा है। इसके अतिरिक्त संस्कृत के अन्य काव्यग्रन्थों में समुद्र-यात्रा की चर्चा प्रायः मिलती है। हितोपदेश, कथा-सरित्सागर आदि कहानी की पुस्तकों में भी समुद्र-यात्रा की बहुत सी कथायें लिखी हैं। इन वर्णनों के अतिरिक्त समुद्र-यात्रा की पुष्टि के लिये शिलाखंडों पर अंकित जलयान के चित्र बहुतायत से पाये जाते हैं। भारत वर्ष से सुदूर स्थित जावा द्वीप में भी भारतीय जलयानों के चित्र अब तक पाए जाते हैं जिनसे आर्यों के समुद्र में दूर दूर तक यात्रा करने का विश्वास कर सकते हैं।

आर्यों ने प्राचीनकाल में जिन जिन देशों तक यात्रा की होगी उनमें अधिकांश व्यापार के लिये उनका आवागमन हुआ होगा, परन्तु व्यापार के साथ ही उनमें अपनी आर्य संस्कृति को सुदूर देश में फैलाने की उत्कंठा ने भी विशेष योग दिया होगा। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हम भगवान बुद्ध के धार्मिक अभ्युदय में देखते हैं। जिस समय बुद्ध भगवान ने अपने धर्मोपदेश का प्रसार करने

के लिए बौद्ध भिक्षुओं के अंतस्तल में अपना मंत्र फूका, उस समय भारत के संकुचित क्षेत्र से संसार के दूर से दूर ज्ञात और अज्ञात देशों और द्वीपों तक पहुँचने के लिए बाहर निकल पड़ने के लिये एक बड़ी वेगवती लहर उठ खड़ी हुई जिसके फल-स्वरूप चीन, जापान, सुमात्रा, जावा, और अन्य बहुत से देश बौद्ध भिक्षुओं द्वारा छान डाले गए। स्थल खंड के अतिरिक्त जलखंड में भी जलयानों पर दूर दूर तक की भीषण यात्रा कर सकने के लिए बुद्ध भगवान के संदेश के कारण एक नई शक्ति प्राप्त हुई जिससे भारतीय नाविक समुद्री संकटों का सामना करते हुए बहुत दूर तक भारतीय महात्मा का संदेश पहुँचा सके।

प्राचीन काल में समुद्र-यात्रा करना बड़ा कठिन कार्य था। उन दिनों आज कल की भाँति समुद्र-मार्ग दिखाने के लिए कोई साधन नहीं था। आज-कल के लोहे के विकराल जलयानों के स्थान पर उन दिनों लकड़ी के ही जलयान थे और इंजिन शक्ति के स्थान पर डाँड़ वा पालों की शक्ति से उनका संचालन हो सकता था। दिशा के ज्ञान के लिए दिन को सूर्य और रात को तारों पर ही आश्रित रहना पड़ता था। (चीन वालों ने साधारण ढंग के दिशासूचक यंत्रों को भी जन्म दिया था। स्थल खंड के किनारे जलयानों का चलाना अधिक कठिन नहीं था। इस कारण प्रारम्भ में समुद्र-यात्राओं के लिये आर्यों को तट का आश्रय ही लेना पड़ा होगा परन्तु बौद्ध धर्म ग्रन्थों में तट से दूर खुले महासागर में होने वाली यात्राओं का ऐसा वर्णन मिलता है कि उन पर हमें

विश्वास करना ही पड़ता है। उनमें ऐसा उल्लेख है कि महासागर के यात्री जलयानों में बलिष्ट पंख वाले पक्षी रखते थे। मध्य समुद्र में होने पर जब उन्हें भूमि के निकट होने का पता लगाना होता तो वे पक्षी को उड़ा देते। पक्षी ऊपर उड़ कर निकट भूमि होने पर उस ओर उड़ जाता और यदि भूमि निकट न होती तो वह लौट कर फिर जलयान पर ही लौट आता।)

(इस प्रकार के साधनों से) बौद्ध भिक्षुओं ने एशिया और अफ्रिका महाद्वीप के देशों तक ही समुद्र-यात्रा न की थी प्रत्युत वे अमेरिका तक भी जा पहुँचे थे। अभी थोड़े दिनों पूर्व तक हम कोलम्बस को अमेरिका का पहले पहल अन्वेषण करने वाला समझते थे परन्तु आधुनिक ऐतिहासिक खोजों ने सिद्ध कर दिया है कि कोलम्बस के कम से कम दो सहस्र वर्ष पूर्व भारतीयों ने उस महाद्वीप तक यात्रा ही न की थी प्रत्युत अपनी सभ्यता भी फैलाई थी जिसके चिह्न वहाँ पर भूमि खोदने पर हालमें ही मिले हैं। मेक्सिको में बौद्ध धर्म के प्राचीन चिह्न पाए गये हैं। वहाँ पर भगवान् बुद्ध की मूर्तियों के मिलने के अतिरिक्त नगर आदि के नामों में भी आर्यों की भाषा की साम्यता पाई जाती है। इन प्रमाणों से पुरातत्ववेत्ता इसे एक मुख से स्वीकार करते हैं कि अमेरिका में भारतीय आज से सहस्रों वर्ष पूर्व पहुँच चुके थे।

प्राचीन काल में आर्य लोगों ने भौगोलिक अन्वेषण में कितना पग आगे बढ़ाया था उसका हमें इन बातों से कुछ आभास मिल रहा है। (यह पूछा जा सकता है कि जब आर्यों ने इतने अधिक

देशों तक अपनी पहुँच की तो उन यात्राओं और अन्वेषणों का वर्णन क्यों नहीं लिखा परन्तु आर्यों ने जितने साहित्य का निर्माण किया था वे दुर्भाग्यवश पूर्ण रूप में आज उपलब्ध नहीं हैं। प्राचीन काल से संगृहीत बहुत से पुस्तकालयों को विजातियों ने भारत में आक्रमण करने के लिए आने पर सर्वथा विध्वंस कर दिया था। उन विध्वंस किये ग्रन्थों के साथ आर्यों की कितनी ही विद्या का लोप हो गया। सम्भव है उन्हीं ग्रन्थों के साथ उनके वे ग्रन्थ भी लुप्त हो गए हों। जिनमें आर्यों ने अपने भौगोलिक अन्वेषणों का उल्लेख किया हो। प्राचीन काल में मुद्रण यंत्र का जन्म न हो सका था और न कागज़ का ही बाहुल्य था। ताड़ पत्र, भोजपत्र वा अन्य वनस्पतियों की छाल वा पत्ते तथा धातुओं के पत्तरों पर ही ग्रन्थ लिखे जा सकते थे। इस कारण उनकी बहुत अधिक प्रतियाँ नहीं की जा सकती थीं। बड़े बड़े पुस्तकालयों में ही वे पाई जा सकती थीं। लोग ग्रन्थों को कण्ठस्थ कर काम चलाया करते थे परन्तु जब विदेशियों द्वारा हमारे पुस्तकालयों का सर्वनाश हुआ तो प्राचीन विद्यापीठों के आचार्य और शिष्य भी साथ ही काल के ग्रास बनाये गए। इस कारण इधर उधर भूले भटके विद्वानों को कण्ठस्थ होने वा कहीं कुछ पुस्तकों के बचे रह जाने से भारतीय साहित्य कुछ अंश में सुरक्षित रह सका है। इन कारणों से हम अपने साहित्य में प्राचीन काल के भौगोलिक अन्वेषण के पाने की विशेष आशा नहीं रख सकते।

२--योरप में एशियाई अन्वेषक



प्राचीन योरप में भौगोलिक ज्ञान बढ़ानेवाली सब से प्राचीन जाति फीनीशियन समझी जाती है। इस जाति ने दो सहस्र वर्ष तक गौरवशाली रह कर जो महत्वपूर्ण कार्य किया दुर्भाग्यवश उसका कोई उल्लेख नहीं छोड़ गई है तथापि कतिपय अन्य जातीय लेखकों के उल्लेख और कुछ अनुमान से इनके उद्योगों का जो आभास मिलता है वह बड़ा विस्मयजनक है। इन्होंने अपना कार्यक्षेत्र समुद्र-तल को बना कर जितनी अधिक सफलता प्राप्त की वह बहुत ही गौरवशाली है।

इतिहासवेत्ता बतलाते हैं कि फीनीशियन लोगों का आदिम निवास-स्थान फ़ारस की खाड़ी के तट पर बेबिलन था जहाँ फुरात और दजला नदियों ने उन्हें नौका चलाने का अवसर दिया। इन्हों ने बेबिलन से समुद्र-तल पर अपने जलयान दौड़ाने का साहस किया। वे जलमार्ग से भारत के साथ आज से कई सहस्र वर्ष पूर्व व्यापार करते थे। अरब सागर में नौकागमन विद्या में प्रवीण होकर इन लोगों ने लाल सागर के तट पर अपनी बस्ती बनाई थी। लाल सागर को छोड़ आगे बढ़ने पर ये रूम सागर में जा पहुँचे थे। और अन्त में उसी समुद्र के पूर्वी तट पर अपना निवास बना

इन्हों ने समस्त योरप और अफ्रिका में अपनी कीर्ति-पताका फहराई थी।

रूम सागर के पूर्वी तट पर इनकी जहाँ बस्ती थी उस प्रान्त में ताड़ के पेड़ अधिकता से उत्पन्न होते थे और ताड़ को यूनानी भाषा में फीनिश कहते हैं, इस लिए यूनान देश वालों ने इनके देश को फीनीशिया नाम से प्रसिद्ध किया। फीनीशिया एशिया माइनर के तट पर केवल २२५ मील की लम्बाई और १२ मील की चौड़ाई में फैला था। इसके पूर्व की ओर लेबनन पर्वत फैला हुआ था जो इनके देश के लिए दीवार का काम करता था। जिस समय फीनीशियन लोग अरब और लाल सागर छोड़ कर रूम सागर के तट पर पहुँचे उस समय योरप के समुद्र-तल पर कहीं कोई मनुष्य अपनी छोटा मोटी नौका पर भी नहीं दिखाई पड़ सकता था। इस कारण जलखण्ड से पृथक देशों में एक दूसरे का कुछ भी पता न था। फीनीशियन लोगों ने वहाँ अपनी नाविक विद्या से समुद्र-तल पर जलयानों को दौड़ाना प्रारम्भ कर लोगों में भौगोलिक ज्ञान की वृद्धि करने में बड़ी सहायता दी।

समुद्र-यात्रा के लिए फीनीशियन लोगों ने टायर और सिडन नाम के दो पोतस्थलों का निर्माण किया था जहाँ से समस्त योरप और अफ्रिका के रूम सागर के तटस्थ देशों तक उनके जलयान पहुँचते थे। ये दो नगर व्यापार-जगत में यूनान और रोम के अभ्युत्थान के पूर्व तक संसार में अपना कोई सानी नहीं रखते थे। इनका गौरव निरन्तर कई शताब्दियों तक अक्षुण्ण रहा। इन

दोनों में सिडन के स्थान पर सईद बंदर आज के व्यापार-जगत में भी अपना एक विशेष स्थान रखता है परन्तु टायर सर्वथा विस्मृत किया जा चुका है।

रूम सागर में फीनीशियन लोगों ने ईसा के १२०० वर्ष पूर्व अर्थात् आज से ३ सहस्र वर्ष पूर्व प्रवेश किया था। उसी समय इन पोतस्थलों की स्थापना हुई थी। अरब सागर की अपेक्षा रूम सागर के अधिक शान्त होने से इन लोगों ने अपने पूर्व के निवास-स्थान को छोड़ कर फीनीशिया को ही अपना निवास-स्थान बना लिया। इनका यह नया देश यद्यपि आकार में बहुत छोटा था तथापि इनके जलयानों के निर्माण के लिए लेबनन के जंगलों में अच्छी लकड़ी का बाहुल्य था। समुद्र-तट पर इन्हें घोंघे उपलब्ध थे जिनसे ये रंग तैयार करते थे और उसमें अन्य वस्तुएँ मिला-कर भाँति भाँति के रंग में अनेक वस्तुएँ रंग कर सब देशों में पहुँचाते थे।

इसके साथ ही फीनीशिया में आने पर भी उनका भारत के साथ व्यापार जारी था। उसके लिए फ़ारस की खाड़ी में उनके पोतस्थल थे जहाँ से भारत को जलयान आते जाते थे। उन जल-यानों द्वारा भारत का माल मँगाया जाता था। वह माल रूम सागर तक पहुँचा दिए जाने पर फिर टायर और सिडन के जलयानों से पश्चिम के समस्त देशों में पहुँचाया जाता था। योरप के देशों से भी वे एक स्थान का माल लेकर दूसरे स्थान पर पहुँ-चाते थे। इस व्यापार के कारण फीनीशियन लोगों ने रूम सागर

के तट के समस्त देशों का ज्ञान प्राप्त कर अटलांटिक महासागर के तट के योरप और अफ्रिका के देशों तक भी अपनी पहुँच की थी।

फीनीशियन लोग जिन देशों के साथ व्यापार करते थे उनमें उनके व्यापारिक नगर बस गए थे। ये कालान्तर में उनके उपनिवेश बन गए जिनमें अफ्रिका के उत्तरी तट पर उटिका और कार्थेज तथा अटलांटिक महासागर के तट पर स्पेन में केडिज प्रसिद्ध थे। इन में से कार्थेज ने अपनी मातृ भूमि के पोतस्थल टायर और सिडन का अन्त हो जाने पर भी कुछ समय तक के लिए फीनीशियन जाति की पताका ऊँची रक्खी थी और कई शताब्दियों तक रोम के आक्रमणों का सामना करने के पश्चात् फीनीशिया का गौरव नष्ट होने दिया था।

फीनीशियन लोगों ने जितना गौरवपूर्ण कार्य किया उसको उन्हों-ने स्वयं लिपिबद्ध किया था। वे आंग्ल वर्णमाला के जन्मदाता थे और उनकी जाति बड़ी सभ्य थी। उन्होंने जिन जिन स्थानों की यात्रा की उनका बड़ी होशियारी से मानचित्र बनाया और उन्होंने जो कुछ देखा उसका वर्णन लिखा जिससे उनके उद्योगों से उन की संतान लाभ उठा सके परन्तु उन सब बातों को वे इस प्रकार गुप्त रखते थे कि उनकी जाति को छोड़ कर किसी भी दूसरी जाति का व्यक्ति उसे जान न सके जिससे व्यापार एक मात्र उन्हीं के हाथ में रह सके। उनकी इस नीति के कारण हम आज इस बात का पूर्ण ज्ञान रखने में असमर्थ हैं कि उनको किस दर्जे तक ज्ञान-वृद्धि का अवसर मिला था।

यद्यपि व्यापारिक प्रतिद्वन्दिता में अपनी जाति के सम्मुख दूसरों को न आने देने के लिए फीनीशियन लोग अपनी जानकारी गुप्त रखते थे तथापि उनका व्यवहार बड़ी ईमानदारी और शिष्टता का था। वे दूसरों का आदर करना जानते थे और उनके पोतस्थल सम्पूर्ण संसार के लिए खुले हुए थे। उनकी ईमानदारी के व्यवहार का एक उदाहरण बड़ा मनोरंजक है। वे जिन जातियों के साथ व्यापार करते थे उन में अफ्रिका के मूल निवासी भी थे। उनसे उनकी कभी देखा देखी नहीं होती थी परन्तु क्रय-विक्रय वा व्यापारिक वस्तुओं का विनिमय हो जाता था। इसके लिए वे उनके देश के समुद्र-तट पर जाकर अपने व्यापारिक पदार्थों की कई ढेरी बना कर रख देते थे और वहाँ से हट जाते थे। दूसरे दिन वहाँ फिर जाने पर प्रत्येक ढेरी के पास सोना प्रचुर मात्रा में रक्खा हुआ होता था। जिन ढेरियों के पास रक्खे हुए सोने को वे उनके मूल्य के लिए यथेष्ट समझते थे वहाँ से सोना उठा कर व्यापारिक पदार्थ की ढेरी छोड़ देते थे और जिस ढेरी के लिए वे सोने की मात्रा कम समझते थे वहाँ का सोना न उठा कर फिर लौट जाते थे। अगले दिन आने पर छोड़े हुए सोने में कुछ और सोना मिलाया रहता था। उसे वे उठा कर वस्तुओं की ढेरी छोड़ देते थे। इस प्रकार इनका अफ्रिका के मूल निवासियों के साथ व्यापार होता था।

फीनीशियन लोगों की अपनी जानकारी गुप्त रखने की नीति के कारण कुछ अन्य जाति के लेखकों से ही हमें उनका कुछ ज्ञान

होता है। इनका वर्णन हिब्रू और यूनानी लेखकों द्वारा ही कुछ उपलब्ध होता है। हिरोडोटस नाम के एक विख्यात यूनानी लेखक ने इनकी एक यात्रा का उल्लेख किया है जिस पर वह यद्यपि स्वयं विश्वास नहीं करता तथापि आधुनिक ऐतिहासिक खोजों से वह यात्रा सत्य प्रतीत होती है। यह यात्रा फीनीशियन लोगों को बहुत ही अधिक गौरव प्रदान करने वाली है। यह एक बहुत प्रसिद्ध बात है कि सन् १४९८ ई० में वास्को डि गामा पुर्तगाल से चल कर अफ्रिका महाद्वीप का चक्कर लगाते हुए भारत वर्ष तक पहुँचा था और उसीने योरप से भारतवर्ष तक के जल-मार्ग का पहले पहल पता लगाया था परन्तु हमें यह सुन कर आश्चर्य होगा कि वास्को डि गामा के एक सहस्र वर्ष पूर्व ही फीनीशियन लोगों ने अफ्रिका महाद्वीप का चक्कर लगाकर अरब सागर से अटलांटिक महासागर और जिब्राल्टर का मुहाना होते हुए रूम सागर तक के जल-मार्ग का प्रत्यक्ष अनुभव किया था।

हिरोडोटस के कथनानुसार फीनीशियन लोगों ने यह लम्बी समुद्र-यात्रा मिस्र के एक नीकू नाम के राजा की आज्ञा से ईसा के लगभग ६०० वर्ष पूर्व की थी। नीकू ने ६१० ई० पूर्व से ५९४ ई० पूर्व तक मिस्र का राज्य किया। इसकी कुछ जल-सेना लालसागर में और कुछ रूम सागर में थी। दोनों समुद्रों के मध्य स्वेज का स्थल-डमरूमध्य था जो एशिया और अफ्रिका महाद्वीप को मिलाए हुए था। इस कारण इस स्थल-डमरूमध्य के कारण

नीकू के जहाजी बेड़े एकत्र नहीं हो सकते थे। इस कठिनाई को दूर करने के लिये उसने स्वेज की नहर खुदवा कर लाल सागर को रूम सागर से मिलाने का प्रयत्न किया। नीकू के पूर्व कुछ और सम्राटों ने भी नहर खुदवाने का प्रयत्न किया था जिसके फलस्वरूप कुछ दूर तक गड्ढा पहले से ही बन चुका था परन्तु इतनी बड़ी नहर खुदवा सकना नीकू सम्राट की शक्ति से बाहर की बात सिद्ध हुई। अपने इस प्रयत्न में असफल हो कर सम्राट ने इस बात को देखने का प्रयत्न किया कि लाल सागर से दक्षिण की ओर चल कर अफ्रिका महाद्वीप का चक्कर लगाते हुए अटलांटिक महासागर से रूम सागर तक समुद्री मार्ग से पहुँचना सम्भव है वा नहीं जिससे उसका लाल सागर का जहाजी बेड़ा रूम सागर के जहाजी बेड़े के साथ मिल सके।

इतनी लम्बी और कठिन यात्रा के लिए सम्राट फीनीशियन लोगों पर ही भरोसा कर सकता था। इसलिये उसने उन लोगों को जहाज देकर यह दुरूह कार्य सौंपा। फीनीशियन नाविकों ने भारत महासागर से इस यात्रा को प्रारम्भ किया और अफ्रिका के किनारे यात्रा करने लगे। भारत महासागर से होकर ये दक्षिण महासागर में पहुँचे। मार्ग में जहाँ ग्रीष्म ऋतु प्रारम्भ हो जाती वहीं वे किनारे ठहर जाते और स्थलखंड में पहुँच कर खेतों में अनाज बो देते। फ़सल तैयार होने तक वहीं ठहरे रहते। फ़सल काट कर फिर वे आगे यात्रा करते। इस प्रकार दो वर्ष तक यात्रा करते रहने के पश्चात् अफ्रिका महाद्वीप का चक्कर

लगाकर तीसरे वर्ष वे जिब्राल्टर के मुहाने के पास पहुँच सके और वहाँ से रूम सागर में प्रवेश कर फिर अपने देश में पहुँच सके।

इस लम्बी यात्रा को पूर्ण कर लेने पर उन लोगों ने बतलाया कि यात्रा के कुछ भाग में उन्हें सूर्य दाहिनी ओर दिखाई पड़ता था। यह अफ्रिका महाद्वीप का चक्कर लगाते हुए आवश्यक बात थी क्योंकि अफ्रिका का दक्षिणी भाग भूमध्य रेखा के दक्षिण है और भूमध्य रेखा के उत्तर के योरप आदि देशों में सूर्य के बाईं ओर दिखाई पड़ने के स्थान पर उस भाग में वह दाहिनी ओर दिखाई पड़ता परन्तु हिरोडोटस ने उनकी इसी बात पर उनकी यात्रा पर अविश्वास प्रकट किया। जो बात हिरोडोटस के समय के लिए इस यात्रा को झूठी सिद्ध करने वाली जान पड़ती थी वही आज के प्राकृतिक भूगोल के ज्ञान की दृष्टि से यात्रा को सत्य सिद्ध करने में सहायक है।

यदि हमें फीनीशियन लोगों की इस लम्बी यात्रा को बताने वाली इन बातों के अतिरिक्त और कुछ प्रमाण उपलब्ध न होता तो हम इसकी सत्यता पर अब भी सन्देह किये बिना नहीं रहते थे परन्तु फीनीशियन लोगों का गौरव बढ़ाने के लिए दक्षिणी अफ्रिका में खुदाई करने पर हाल ही में उनके भग्नावशेष मिले हैं। रोडेशिया प्रान्त में कई स्थानों पर भूमि के नीचे फीनी-शियन लोगों के धर्म और सभ्यता के चिह्न प्राप्त हुए हैं। इनको देख कर पुरातत्ववेत्ताओं ने स्वीकार किया है कि वहाँ पर उन्होंने

अपनी सभ्यता फैलाई थी और अपना उपनिवेश बसाया था। इस प्रमाण से हम सहज ही अनुमान कर सकते हैं कि फीनीशियन लोगों ने लाल सागर से अफ्रिका महाद्वीप की परिक्रमा कर रूम सागर की अवश्य ही यात्रा की होगी।

परन्तु जिन फीनीशियन लोगों ने पाश्चात्य जगत में व्यापारिक जाल बिछाकर भौगोलिक ज्ञान की वृद्धि में इतनी अधिक सफलता प्राप्त कर ली थी उनका अभ्युदय सर्वदा के लिए स्थिर न रह सका। एक समय संसार में अपना प्रतिस्पर्द्धी न रखने वाली इस जाति का भी अवसान हुआ और इसके अद्वितीय ऐश्वर्यशाली टायर और सिडन पोतस्थल अनेक शताब्दियों तक व्यापार के प्रमुख केन्द्र और सर्वश्रेष्ठ नगर रह कर मिट्टी में मिला दिए गये। फीनीशियन लोगों के इस पतन की रोमांचकारी कहानी अन्यत्र इतिहास के पृष्ठों में मिल सकती है। उसके वर्णन के लिए यहाँ पर स्थान नहीं है।

———

३--प्राचीन योरप के अन्वेषक



रप में जिस समय फीनीशियन लोगों के अवसान का समय आ पहुँचा था, उसी समय यूनान का अभ्युदय होना प्रारम्भ हुआ था। यूनानियों ने फोनीशियन लोगों से नाविक विद्या का पाठ सीखकर समुद्र-तल पर अपने जलयानों को दौड़ाना आरंभ किया। परन्तु फीनीशियन लोगों की गुप्त नीति के कारण उनकी श्रेणी तक कोई दूसरी जाति उनका अनुकरण कर नहीं पहुँच सकती थी। ईसा के पूर्व चौथी शताब्दी में यूनान के सम्राट सिकन्दर महान ने फीनीशियन लोगों के प्रमुख पोतस्थल को विध्वंस कर उनकी सभ्यता को फीनीशिया से निर्मूल कर दिया। यद्यपि इस आक्रमण से ही अन्वेषण-कार्य सर्वथा स्थगित नहीं हो गया तथापि उसमें शिथिलता अवश्य आने लगी। फीनीशिया देश का विध्वंस हो जाने पर भी उसके उपनिवेश बचे थे। इस कारण वे अपने कार्य में लगे रहे। उन उपनिवेशों में कार्थेज के फीनीशियनों ने अपनी जाति की कीर्ति अधिक दिनों तक स्थिर रक्खी। जिस समय रोम साम्राज्य का अभ्युदय हो रहा था, उस समय कार्थेज भी अपनी कीर्ति-पताका फहरा कर अभ्युदय कर रहा था। जहाँ रोमवाले अपनी तलवार के बल पर साम्राज्य फैला रहे थे वहाँ कार्थेज अपने व्यापारियों और नाविकों के बल पर व्यापारिक

केन्द्रों का प्रसार कर अपना प्रभुत्व स्थापित किए हुए था।

कार्थेज के उपनिवेश से जिन वीर नाविकों ने अन्वेषण-कार्य में विशेष योग दिया था उनमें हैनो और हिमिल्को दो व्यक्तियों की यात्रा का उल्लेख मिलता है। हैनो ने ईसा के लगभग ४७० या ५७० वर्ष पूर्व ५० डांड़ों से खेए जाने वाले ६० जहाजों पर ३०००० मनुष्यों के साथ जिब्राल्टर का मुहाना पार कर अटलांटिक महासागर में अफ्रिका के तट के किनारे किनारे दक्षिण की ओर यात्रा की थी। उसने किनारे किनारे कई स्थानों पर उपनिवेश स्थापित कर सियर्रा लियोन प्रान्त के तट तक का पता लगाया था। जब हैनो यात्रा से लौट कर कार्थेज पहुँचा तो उसने उसका विवरण एक पत्तर पर खुदवा कर एक मन्दिर में रखवा दिया। उसका यूनानी भाषा में अनुवाद पत्तर पर खुदा हुआ अब भी सुरक्षित रक्खा है। फीनीशियन लोगों की यात्राओं के वर्णन में से एक यही अब तक उपलब्ध है।

हिमिल्को के लिए कहा जाता है कि वह हैनो के विपरीत ज़िब्राल्टर को पार कर अटलांटिक महासागर में उत्तर की ओर यात्रा कर इंग्लैड तक पहुँचा था।

जिस प्रकार यूनान द्वारा फीनीशिया का अन्त हुआ था उसी प्रकार कार्थेज के अन्त का कारण रोम हुआ। इसके लिए रोम को बड़ी भीषण लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। जिस समय रोम ने अपने साम्राज्य का बीज वपन करते समय कार्थेज से युद्ध प्रारम्भ किया उस समय उसके पास जहाजों का सर्वथा अभाव था।

इसलिए एक विकट समुद्री शक्तिवाली जाति का सामना करने के लिये उसने ईसा के २६२ वर्ष पूर्व फीनीशियनों का अनुकरण कर पहले पहल जहाज-निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया। प्रचुर संख्या में जहाजी बेड़े से सुसज्जित होने पर बहुत दिनों तक कई विकट युद्धों के पश्चात् ईसा के १४६ वर्ष पूर्व कार्थेज का विध्वंस हुआ। चार वर्ष तक अन्तिम युद्ध का सामना करते हुए उसके सात लाख निवासियों में से केवल ५०००० बच रहे जो बन्दी बना लिए गए। इस अन्तिम युद्ध के साथ संसार की एक बहुत ही गौरवशाली जाति सदा के लिए अतीत में लुप्त हो गई।

यद्यपि फीनीशियन लोगों के पश्चात् भूपृष्ठ पर यूनान और रोमवालों ने अपनी सभ्यता का जन्म देकर बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की, तथापि इनसे भौगोलिक अन्वेषण में विशेष सहायता नहीं मिली। इनके जहाज भूमध्य सागर तक ही अपनी दौड़ लगाते थे। यूनानवालों में केवल एक व्यक्ति का नाम मिलता है जिसने जिब्राल्टर को पार कर कुछ लम्बी समुद्र-यात्रा की। यह व्यक्ति पिथियस नाम से प्रसिद्ध है। जिस समय यूनान का अभ्युदय-काल था, उस समय उसके उपनिवेश भूमध्य सागर में कई स्थानों पर बसे थे। उन्हीं में एक मार्सेलीज़ फ्रांस के दक्षिणी तट पर रोम नदी के मुहाने पर था। इसी उपनिवेश से पिथियस ईसा के पूर्व चौथी शताब्दी में जिब्राल्टर को पार कर उस ओर के देशों का पता लगाने के लिए भेजा गया जिससे उन देशों से व्यापार किया जा सके। उसने जिब्राल्टर का मुहाना पार कर अटलांटिक

महासागर में प्रवेश किया और किनारे किनारे बिस्के की खाड़ी होता हुआ इङ्गलैंड पहुँचा। वहाँ से उत्तर चलकर वह एक ऐसे भूखंड में पहुँचा जिसका नाम वह थ्यूल लिखता है। यह ठीक नहीं कहा जा सकता कि थ्यूल कौन सा स्थान था परन्तु अनुमान से यह कहा जा सकता है कि थ्यूल इङ्गलैंड के उत्तर में स्थित शटलैंड द्वीप वा और अधिक उत्तर की ओर स्थित बड़ा द्वीप आइसलैंड होगा।

थ्यूल से आगे जाने पर वह ध्रुव प्रदेश में पहुँचा। उसने लिखा है कि वहाँ सूर्य रात-दिन कभी भी न डूबने लगा। उससे आगे बढ़ने पर अब ऐसा हुआ कि जहाँ सूर्य रात-दिन दिखाई पड़ता था वहाँ रात-दिन अस्त ही रहने लगा। उसके इस वर्णन से हम अनुमान कर सकते हैं कि वह ध्रुव वृत्त को पार कर ध्रुव प्रदेश में पहुँच गया होगा। पिथियस उत्तर की ओर ज्यों ज्यों आगे बढ़ता जाता था, उसे विलक्षण स्थिति दिखाई पड़ती थी। पहले रात-दिन सूर्य को निकला हुआ और फिर रात-दिन डूबा हुआ देखकर विस्मित हो रहा था। अब आगे जाने पर उसे समुद्र-तल के ऊपर एक लम्बी चौड़ी और ऊँची अंधकार-मय दीवाल दिखाई पड़ी और साथ ही उसके जहाज की गति सर्वथा रुक गई। पाल के तने होने पर भी हवा की शक्ति उसको आगे खिसका सकने में सर्वथा असमर्थ थी। इतना ही नहीं, जहाज का लंगर भी पानी में फेंके जाने पर उतराया ही रह गया। उसके इस वर्णन को पढ़कर हम सहज ही अनुमान कर सकते

हैं कि अधिक सर्दी के कारण ध्रुव प्रदेश का समुद्र जम गया होगा जिससे इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हुई होगी। परन्तु ध्रुव प्रदेश से दूर सदा शीतोष्ण कटिबन्ध में रहने वाले बेचारे पिथियस को कितनी आशंका हुई होगी, इसका हम अनुमान नहीं कर सकते। ऐसी भयंकर स्थिति का सामना कर जब पिथियस अपने देश में लौटा तो लोगों ने उसकी यात्रा का वर्णन बड़े कौतूहल से सुना।

यद्यपि पिथियस की यह यात्रा भौगोलिक ज्ञान में वृद्धि करने वाली है, तथापि यूनानी लोग फीनीशियन लोगों की अपेक्षा बहुत ही कम दूर दूर देशों की यात्रा करते थे। इस कारण उनका भौगोलिक ज्ञान अधिक उन्नत नहीं हो सकता था। यूनान के प्रसिद्ध कवि होमर ने लिखा था कि पृथ्वी चपटी और वृत्ताकार है और उसके चारों ओर गोलाई में समुद्र विशाल नद के रूप में प्रवाहित हो रहा है। पृथ्वी के आकार के सम्बन्ध में होमर की यह कल्पना हिब्रू लोगों से मिलती जुलती थी। हिब्रू लोगों का भी विश्वास था कि पृथ्वी चपटी है जिसके चारों ओर समुद्र हिलोरें मार रहा है

ईसा के पूर्व पाँचवीं शताब्दी में यूनान में हिरोडोटस नाम का एक यात्री हो गया है। यह इतिहासज्ञ भी था। पहले पहल इस ने योरप में इतिहास लिखने का श्रीगणेश किया। यह ईसा के ४८५ वर्ष उत्पन्न हुआ था। इसने यूनान के प्रत्येक भाग, इजियन सागर के द्वीप, एशियाई कोचक प्रायद्वीप, मिस्र, अरब, फारस और भारतवर्ष के उत्तरी-पश्चिमी भाग की यात्रा की और

उसका बहुत ही मनोरंजक वर्णन लिखा। इसने इन सब देशों को स्वयं अपनी आँख से देखकर जिस प्रकार इनका ठीक ठीक वर्णन किया, वे बातें आज भी सत्य देखी जा सकती हैं। वास्तव में योरप में इतिहास के साथ साथ लिखित भूगोल विद्या का जन्म-दाता हिरोडोटस ही था।

जिस समय यूनान के सम्राट सिकन्दर महान ने एशियाई कोचक, फारस और अफ्रिका के कुछ भाग पर विजय प्राप्त कर ईसा के ३२७ वर्ष पूर्व अपनी सेना को विजय की लालसा से भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर भाग में प्रविष्ट किया था, उस समय एशि-याई देशों का योरोपीय देशों के साथ सम्पर्क होने से इनमें विशेष रूप से व्यापार होने लगा था। इस कारण लोगों के भौगो-लिक ज्ञान में कुछ वृद्धि हुई थी। सिकन्दर के भारत में आक्रमण के पश्चात् लोगों ने भूगोल विद्या का विशेष अध्ययन कर अपनी ज्ञान-वृद्धि करने का प्रयत्न किया था। उन्हीं में एक विद्वान् ईसा के २४० वर्ष पूर्व हुआ था। उसने होमर वा हिब्रू लोगों के सिद्धा-न्त के विरुद्ध पृथ्वी के यथार्थ आकार का अनुमान किया था। उसने घोषित किया कि पृथ्वी चपटी वा चक्के की तरह गोल नहीं है प्रत्युत नारंगी की तरह गोल है। इसके साथ ही उसने गणित के बल पर उसकी परिधि नापने की विधि भी जान ली थी। उसने पृथ्वी का मानचित्र भी तैयार किया था, यद्यपि उसमें बहुत सी भद्दी अशुद्धियाँ थीं। उदाहरणार्थ उसने कैस्पियन सागर को उत्तरी महासागर से मिला हुआ माना था।

जब रोम साम्राज्य का अभ्युदय हुआ तो उस समय भौगोलिक अन्वेषण करनेवाले यात्री दिखाई नहीं पड़ते थे परन्तु इस साम्राज्य के समृद्धिशाली और विस्तृत होने पर व्यापार का अधिक प्रसार हो सका था। श्री-सम्पन्न व्यक्तियों और शासकों के आमोद-प्रमोद के लिए दूर दूर के देशों की वस्तुएँ सब ओर से आकर रोम पहुँचती थीं। इस कारण इन व्यापारिक यात्राओं से लोगों में देशों का ज्ञान फैल सका था।

ईसा की पहली और दूसरी शताब्दी में यूनान और रोम में भूगोल विद्या के कई पण्डित हुए थे जिन्होंने इस विद्या की उन्नति करने में योग दिया था। उन्हीं में से टालेमी नाम का एक विद्वान् था। उसका विश्वास था कि पृथ्वी नारंगी की भाँति गोल पिंड है। उसने संसार का एक मानचित्र भी खींचा था जिसका लोग बहुत दिनों तक उपयोग करते रहे।

यह मनुष्य का स्वभाव है कि जब उसे किसी एक वस्तु के सम्बन्ध में ठीक ठीक जानकारी नहीं होती तो उसके सम्बन्ध में कुछ कल्पना कर लेता है। यही बात टालेमी के मानचित्र के साथ भी थी। उसने अपने नकशे में भारत महासागर को चारों ओर भूमि से घिरे एक समुद्र की भाँति खींचा था जिसके दक्षिण में एशिया और अफ्रिका महाद्वीप को जुटाता हुआ एक और महाद्वीप था। टालेमी के विचारानुसार भारत महासागर के दक्षिण का यह बड़ा महाद्वीप और अफ्रिका का मध्यभाग उष्ण कटिबंध में होने के कारण बसने योग्य नहीं थे। इनमें रेगिस्तान ही रेगिस्तान फैला हुआ था।

४-अन्धकार युग

मनुष्य ने प्रारम्भ युग में जब पहले पहल ज्ञान के सब विभागों में उन्नति करना आरम्भ किया था, उस समय यदि वह बराबर उन्नति की ओर ही अग्रसर रहता तो न मालूम कहाँ पहुँच गया होता, परन्तु संसार के इतिहास में हम उन्नति की इस प्रगति को बीच बीच में नाना प्रकार की बाधाओं से कभी कुछ काल के लिए और कभी एक लम्बी अवधि तक के लिए बिल्कुल शान्त पाते हैं। कभी कभी ऐसा भी हुआ है कि किसी अवसर पर मनुष्य-जाति को एक घोर अंधकारमय काल में रहना पड़ा है। उसमें आगे बढ़ने को कौन कहे, मनुष्य का पहले का अर्जित ज्ञान भी अविद्यान्धकार में सर्वथा लुप्त हो गया है और बहुत दिनों के पश्चात् मनुष्य ने फिर ज्ञान-सागर की नए सिरे से खोज प्रारम्भ की है। ऐसे ही कितने अन्धकार-मय कालों से होता हुआ कितनी ही बार उन्नति की एक निश्चित सीमा तक पहुँच फिर नीचे गिर कर नए सिरे से दुबारा चढ़ने का प्रयत्न करता हुआ मानव-समाज आज की दशा को पहुँच सका है।

ऐसे ही अन्धकारमय युगों में एक ६०० ई० से लेकर १२०० ई० तक का समय आधुनिक युग के लिखे गए योरोपीय इतिहास में मिलता है। इस अन्धकार युग के आगमन के पूर्व ही योरप में

अपनी विशाल सम्पत्ति और वैभव के लिए विख्यात रोम साम्राज्य की चारों ओर विजय-दुन्दुभी बज रही थी। एक बार उसके विस्तार, विशद नगरों की मनलुभावनी शोभा, दुर्दमनीय सम्राटों की विकट सेना, राजप्रासादों का अतुल वैभव और राजकीय दरबार की अद्वितीय शोभा को अपनी आँखों से देखकर कौन कह सकता था कि एक दिन इसका भी विनाश होकर शीघ्र ही ज्ञान-भंडार को कुछ समय के लिए समाधि दी जायगी परन्तु सदा समय एक सा ही नहीं रहता। पाँचवीं शताब्दी में इतने वैभव-शाली साम्राज्य को हिलाने वाली बर्बर जातियों का पूर्व की ओर मध्य एशिया के देशों से योरप की ओर आगमन हुआ। निदान रोम साम्राज्य पर भी उनके आक्रमण हुए और उसका अवसान हो गया। इन हूण और गोथ आदि आक्रामक जातियों ने इतिहास का पृष्ठ पलट दिया। रोम साम्राज्य का दुर्धर्ष प्राचीर विद्ध होने से कला-कौशल के केन्द्र और विद्यापीठों का भी पतन हुआ और अविद्या का साम्राज्य स्थापित हो गया। फलतः भौगोलिक अन्वेषण के मार्ग में भी अन्धकार आ उपस्थित हुआ।

इसी समय भारतवर्ष में भी परिवर्तन उपस्थित हो चुका था। जिस समय भगवान बुद्ध के अमृतमय उपदेश का सम्पूर्ण संसार को पान कराने की प्रेरणा से बौद्ध भिक्षु स्थल और जल-खंड को भीषण मार्गों से पार कर दूर दूर देशों में पहुँच सके थे, वह युग चला गया था। सम्राट अशोक की प्रचार-वह्नि की राख भी भारतवर्ष से निकल चुकी थी और गुप्त वंश के समुद्र गुप्त सरीखे

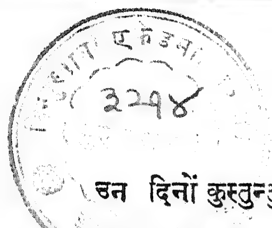
यशस्वी सम्राटों द्वारा हिन्दू धर्म के पुनरुद्धार करने के पश्चात् देश में एक नई लहर का वेग अनुभूत किया जा रहा था। यह लहर योरप की भाँति भारत में भी हूणों का आक्रमण था। सम्राट हर्षवर्धन के अन्तिम रूप में बुद्ध धर्म के उपदेश को भारतीयों के हृदय-तल में स्थित रखने का उद्योग करने के पश्चात् जब बौद्ध धर्म को भारतीय जनता भूल चुकी तो हिन्दू-समाज ने हूणों के संघर्ष के कारण जाँत पाँत का बन्धन बड़ा जटिल बनाना प्रारम्भ किया। उस समय विदेश-गमन और समुद्र-यात्रा को हिन्दू शास्त्रकारों ने धर्म-निषिद्ध घोषित कर भारत को अपनी चहार-दीवारी के बाहर तनिक दृष्टि न डालने के लिए भी विवश किया।

इस प्रकार भारत वर्ष में तो आगे आने वाली अनेक सदियों के लिए भारतीयों का यात्रा-मार्ग सर्वथा बन्द हो गया था परन्तु पाश्चात्य देशोंने इस अंधकार युग के आजाने पर भी कुछ न कुछ भौगोलिक अन्वेषण का कार्य जारी ही रक्खा। इसी कारण आगे चलकर अंधकार युग के समाप्त होने पर संसार में भौगोलिक अन्वेषण-क्षेत्र एक मात्र उन्हीं के हाथ में रहा। अतएव आगे के भौगोलिक अन्वेषणों की कहानियाँ उन्हीं देशों के स्थल वा जलखंड के वीर यात्रियों की कथायें ही होंगी।

जिस समय पाँचवीं शताब्दी में रोम साम्राज्य पर गोथ और हूण आदि जातियों का प्रहार होना आरम्भ हुआ था उसी समय भूमध्य सागर में व्यापारिक यात्राओं को अपने हाथ में लेने के लिए एक नई जाति का उद्भव हुआ। ये लोग वेनिस नगर को

जन्म देनेवाले थे, जो कालान्तर में कई शताब्दियों तक अपने व्यापार के लिए प्रख्यात और सारे संसार में अग्रणी रहा। जिस समय ४५१ ई० में आक्रामकों का दल इटली देश में पो नदी के बेसिन में पहुँचा, उस समय उसमें स्थित पेडुआ और आस पास के अन्य नगरों के निवासी सहस्रों की संख्या में अपनी रक्षा के लिए समुद्र के किनारे चले गए। वहीं एड्रियाटिक समुद्र के तट पर ज्वार के जल से गीली मिट्टी पर ही इन लोगों ने ४५१ ई० में वेनिस नगर बसाया।

समीप में निर्वाह को कोई वस्तु न होने पर भी इन लोगों ने समुद्र की मछलियों पर ही निर्वाह कर जीवन बिताना प्रारम्भ किया। इन लोगों को नौका-निर्माण-विद्या का कुछ भी ज्ञान नहीं था और समीप में शहतीर आदि की लकड़ी का एक टुकड़ा भी उपलब्ध नहीं था परन्तु इन्होंने दूसरी जातियों से यह विद्या सीखकर और अन्य स्थलों से उपयुक्त लकड़ी लाकर नौकाओं का निर्माणकर उन्हें समुद्र में चलाना प्रारम्भ किया। समुद्र के पानी से नमक बनाकर इन्होंने उसे अन्य स्थानों में पहुँचाना प्रारम्भ किया। इस प्रकार रोम साम्राज्य का अवसान हो जाने पर भी वेनिस ने समुद्र में कुछ दूर तक नौकाओं को दौड़ाकर व्यापार का कार्य करना प्रारम्भ किया। धीरे धीरे भूमध्य सागर का व्यापार इनके हाथ आने लगा। सन् ५८४ ई० में जब पूर्वी साम्राज्य से इनका मेल हुआ तो इनको कुस्तुन्तुनिया में व्यापार करने का अधिकार मिला।



उन दिनों कुस्तुन्तुनिया एशियाई देशों के व्यापारिक मार्ग का द्वार था। इस नगर के व्यापार का कार्य वेनिस वालों के हाथ में आजाने से उन्हें पूर्वी देशों से रेशम, जिसके मूल्य में योरप में उसके भार के बराबर सोना मिल सकता था, मसाले और विविध प्रकार के सुगंधित पदार्थों का व्यापार हाथ लगा जिससे मछली पर जीवन-निर्वाह और नमक के व्यापार में सन्तोष रखने का उन्हें भली भाँति पुरस्कार प्राप्त हो सका।

जिस समय वेनिस इस प्रकार धीरे धीरे अपना अभ्युदय कर रहा था, उसी समय पश्चिमी एशिया में एक नई धार्मिक लहर उठ रही थी। इसके जन्म-दाता हज़रत मुहम्मद साहब थे, जिनका अरब में जन्म हुआ था। इनको लोग इस भूमंडल पर मनुष्यों की अज्ञानता दूर करने के लिए ईश्वर का दिव्य संदेश लानेवाला देव-दूत समझते थे। इन्होंने अरब के निवासियों को इस्लाम धर्म का जीवन-पर्यंत उपदेश दिया। इनके मरने के पश्चात् इस लहर को तीव्र गति मिस्र, ट्रिपोली, मोरक्को आदि अफ्रिका महाद्वीप के समस्त उत्तरी देशों और भूमध्य सागर के पूर्व के एशियाई कोचक तथा सीरिया आदि देशों में फैल गई और ये इस्लाम धर्म के गढ़ बन गए। जिब्राल्टर का मुहाना पारकर यह धार्मिक लहर स्पेन तक पहुँची परन्तु फ्रांक लोगों ने उसे और अधिक उत्तर की ओर जाने से रोक दिया।

इस धार्मिक लहर के प्रसार से भौगोलिक अन्वेषण के क्षेत्र में बड़ी क्षति पहुंची। योरप के निवासी ईसाई धर्म मानने

वाले थे और मुसलमान लोग ईसाइयों से युद्ध करना अपना परम धर्म समझते थे, इस कारण मुसलमानी राज्यों में वा उनमें होकर दूसरे देशों में जा सकना ईसाइयों के लिए बिल्कुल कठिन था। भूमध्य सागर के सम्पूर्ण दक्षिणी और पूर्वी किनारे पर मुसलमानों का आधिपत्य था, इस कारण योरोपीय देशों का दक्षिणी और पूर्वी देशों से सम्बंध-विच्छेद हो गया।

जिस ईसाई धर्म के अनुयायी योरप के सभी प्रान्तों में फैले हुए हैं, उसके संस्थापक का एशिया महाद्वीप में यरूसलम नगर में जन्म हुआ था। अतएव सम्पूर्ण ईसाई संसार इसे तीर्थ समझता है। इस स्थान पर मुसलमान लोगों ने अपना अधिकार जमा लिया था। इस कारण इसको पुनः अधिकार में लेने के लिए कई शताब्दियों तक ईसाई देशों के सामन्त और सैनिक मुसलमानों से द्वन्द युद्ध करते रहे जो क्रूसेड वा धार्मिक युद्ध के नाम से विख्यात हैं। इन युद्धों के कारण इटली के जिनोआ और पीसा आदि पोतस्थलों के जलयान भी वेनिस के जलयानों के साथ योरोपीय देशों से युद्ध-क्षेत्र तक सैनिकों को पहुचाने में समुद्री-यात्राओं में संलग्न रहे। इन यात्राओं का पर्याप्त व्यय पाकर वे अधिक सम्पन्न भी हुए परन्तु इनमें लाभ का अधिक भाग वेनिस का ही रहा। इस प्रकार ऐसे कुसमय में भी वेनिस ने अन्य नगरों के साथ अपना गौरव बढ़ाकर यात्रा कार्य को जारी रखने में योग दिया।

जिस समय योरप में वेनिस आदि भूमध्य सागर में नौकाएँ दौड़ा रहे थे, उस समय दक्षिण में मुसलमानों का आधिपत्य होने पर

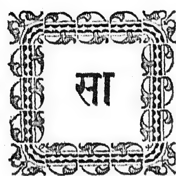
यद्यपि ईसाइयों का प्रवेश नहीं था तथापि मुसलमान साधारण यात्रायें करते रहे। हम अरब का नाम सुनकर नाक भौं सिकोड़ कह सकते हैं कि यात्रा-कार्य में इसने तो कभी योग न दिया होगा परन्तु हज़रत मुहम्मद के इस्लाम धर्म के अभ्युदय के कई शताब्दियों पूर्व हिन्द महासागर में पूर्वी देशों से योरोपीय देशों का व्यापार बहुत कुछ अरब वालों के हाथ में था। उनकी नौकाएं पश्चिम में अफ्रिका महाद्वीप के पूर्वी तट के बन्दरों तक तथा पूर्व में भारत, लंका, ब्रह्मा तथा सुमात्रा तक जाती रहीं। उन्हें भारत महासागर में चलने वाली मानसून हवाओं का पूर्ण ज्ञान था। वे पूर्वी देशों से योरप में केवल मसाले ही नहीं पहुँचाते थे प्रत्युत टिन, कपास, वस्त्र और कई प्रकार की वस्तुएँ भी भारत से योरप में पहुँचाते थे।

योरप और पूर्वी देशों के साथ उनका यह व्यापार कई शताब्दियों तक उनके हाथ में रहा और रोम साम्राज्य के अवसान और अंधकार युग के आगमन पर भी वे अधिक दिनों तक इसको अपने हाथ में रक्खे रहे। इस प्रकार ७ वीं सदी में इस्लाम के अभ्युदय के पूर्व अरब वालों का कार्य-क्षेत्र और कुशलता पीछे की सदियों से विशेष गौरवशाली थी। अरब वालों के व्यापार का वर्णन पढ़ कर हम कह सकते हैं कि वे यात्रा से उदासीन नहीं थे। अरबी भाषा में प्रचलित अलिफ़ लैला अर्थात् सहस्र रजनी चरित्र में सिन्धबाद जहाजी की यात्राओं के वर्णन से उनके भौगोलिक ज्ञान का यथेष्ट परिचय मिलता है। यद्यपि इस कहानी

की सत्यता पर विश्वास नहीं किया जा सकता, तथापि इसकी यात्राओं में जिन देशों का नाम आया है उनकी उपज, वहाँ के निवासी मनुष्य और जन्तुओं का वर्णन बिल्कुल ठीक ठीक मिलता है, इस कारण हम कह सकते हैं कि अरब वालों को इन देशों का अवश्य ही पूर्ण ज्ञान होगा जिससे कहानियों में उनका ठीक ठीक वर्णन आसका है।

अन्धकार युग की इन सब बातों को देख कर हम देखते हैं कि यद्यपि साधारण यात्रा' व्यापार, धार्मिक युद्ध वा अन्य कारणों से होती थी तथापि नूतन स्थानों को ढूँढ़ निकालने वाली यात्राओं का अभाव था जिससे भौगोलिक अन्वेषण का कार्य सर्वथा रुक गया था और ज्ञात स्थानों का भी ज्ञान लोगों को ठीक ठीक न रहने लगा था। ऐसे अन्धकार के समय में उत्तरी योरप में एक नवीन जाति ने अपना कार्य-क्षेत्र विस्तृत कर अमेरिका महाद्वीप तक अपनी पहुच कर ली थी। जब हम इसका वर्णन सुनते हैं तो चकित हो जाते हैं। यह सचमुच बड़े साहस और पुरुषार्थ का काम था। इन लोगों की यात्राओं का वर्णन अगले अध्याय में किया जावेगा।

५-कोलम्बस के पूर्व अमेरिका की खोज



साधारणतया लोग यह जानते हैं कि कोलम्बस नई दुनिया को सर्वप्रथम ढूँढ़ निकालने वाला था, परन्तु हमें यह सुन कर आश्चर्य होगा कि उसके कई शताब्दियों पूर्व ही लोग वहाँ पहुँच चुके थे। मैक्सिको में बौद्ध धर्म के चिह्न मिलने से इस बात का पता तो लगा ही है कि भारतीय आज से सहस्रों वर्ष पूव अमेरिका महाद्वीप तक पहुँच चुके थे, परन्तु उनके कई शताब्दियों पश्चात् योरप की एक जाति भी अटलांटिक महासागर के मार्ग से कोलम्बस के कई शताब्दियों पूर्व ही उत्तरी अमेरिका के पूर्वी समुद्र-तट तक पहुँच चुकी थी। यह जाति वाइकिंग वा उत्तरी लोगों के नाम से विख्यात है।

उत्तरी लोगों का निवास-स्थान नार्वे और स्वीडन मिलकर बने स्कैंडिनेविया प्रायद्वीप में था। वह प्रायद्वीप पथरीले समुद्र-तट की कटानों के लिए प्रसिद्ध है। कटानों को फ़ियोर्ड वा विक नाम से पुकारते हैं। फियोर्डों के तट पर बसने के कारण ये लोग वाइकिंग नाम से प्रसिद्ध हुए। यह प्रायद्वीप योरप के उत्तर में स्थित है, इस कारण इन्हें नार्थमेन अर्थात् उत्तरी लोग भी कहते हैं।

उत्तरी लोगों का मूल निवासस्थान कहीं काला सागर के तट पर था। वहीं से ये लोग स्कैंडिनेविया में आकर बस गए थे। यह देश बिल्कुल शीत कटिबंध के समीप है और उत्तरी ध्रुव की

ओर से आई हुई बर्फीली हवाएं और बर्फ की धाराएँ इसे और भी सर्द कर देती हैं। साथ ही भूमि पथरीली और अनउपजाऊ है। इसी भूखंड को उत्तरी लोगों ने अपना निवास-स्थान बनाया। ये लोग बड़े ही साहसी और वीर थे। इनके हृदय में शौर्य कूट कूट कर भरा था। ये लोग समझते थे कि युद्ध-क्षेत्र को छोड़ अन्यत्र मृत्यु होना बड़े खेद और लज्जा की बात है। इसी कारण यदि इनको स्वाभाविक मृत्यु निकट आती दीख पड़ती तो ये अपना कोई अंग तलवार से विद्ध कर लेते, जिससे इनके देवता प्रसन्न हों। जब वृद्ध राजा मृत्यु के निकट पहुँचते तो वे अपना शरीर एक जहाज में रखवा देते और पाल तान कर वह जलयान समुद्र में छोड़ दिया जाता। उसमें एक स्थान पर आग सुलगा दी गई होती जिससे धीरे धीरे कुछ समय में वह जहाज प्रज्वलित होकर राजा के शरीर के साथ समुद्र के गर्भ में चला जाता।

इस वीर जाति ने जिस देश को अपना निवास-स्थान बनाया था उसमें यद्यपि उपजाऊ भूमि नहीं थी तथापि अच्छे काठ का बाहुल्य था, इस कारण उन्होंने निर्वाह का कोई दूसरा साधन न होने पर समुद्र के वक्षस्थल पर दौड़ाने के लिए जहाजों का निर्माण किया था। उत्तरी लोगों के पूर्व दक्षिणी योरप में कितनी ही जातियाँ अपने अभ्युदय काल में समुद्र-यात्राओं के लिए जहाजों को दौड़ाने में सफल हो चुकी थीं, परन्तु उत्तरी लोगों में एक विशेषता थी। उनका कार्य-क्षेत्र विकट था। दक्षिणी योरप के देशों के जहाज जिस समुद्र में चलते थे, वह स्थल से घिरा होने के

कारण शान्त था, परन्तु उत्तरी लोगों के सम्मुख एक विशाल उद्धत महासागर था, जिसकी प्रचंड लहरें एक बार साहसी नाविकों के हृदय में भी भय उत्पन्न कर सकती थीं। भूमध्य सागर के विरुद्ध इस महासागर में चलने वालों को पग पग पर भयंकर तूफानों और भीषण ज्वार का सामना करना पड़ सकता था। परन्तु ऐसे समुद्र के लिए भी उत्तरी लोगों ने उपयुक्त जहाजों का निर्माण कर खुले महासागर में यात्रा करने का साहस किया।

उत्तरी लोगों में यह एक प्रथा थी कि जिस जहाज पर वे अपने जीवन भर समुद्र-यात्रा करते थे उसी के साथ वे मृत्यु के पश्चात् तट पर समाधिस्थ कर दिए जाते थे। उन समाधियों में गड़े हुए कई एक जहाज इस समय मिले हैं। उन्हें देख कर यह अनुमान किया जा सकता है कि जिस समय उन पर उत्तरी लोग यात्रा करते होंगे उस समय वे किस रूप में रहे होंगे। इन जहाजों के अतिरिक्त इन लोगों ने आधुनिक युग के लोगों की जानकारी के लिए चिकने पत्थरों पर अपने जहाजों के चित्र भी खींचे हैं। उन्हें देख कर यह अनुमान किया जाता है कि इन लोगों ने फीनीशियन लोगों से पोत-निर्माण विद्या सीखी होगी। परन्तु इन लोगों ने स्कैंडिनेविया में अपने कौशल और उद्योग से उन जहाजों को विशद रूप देकर उत्तरी महासागर में तट से दूर खुले सागर में समुद्र-यात्रा करने में जितनी अधिक सफलता प्राप्त की उसके लिए इनकी सराहना किए बिना कोई नहीं रह सकता।

जिस स्थिति में उत्तरी लोगों ने महासागर में विकट यात्राओं

के करने में सफलता प्राप्त की थी, उसका अनुमान कर हम चकित हुए बिना नहीं रह सकते। उनके पास न तो मार्ग का निर्देश करने वाले मानचित्र ही थे और न दिशा का ज्ञान कराने वाले दिक्सूचक यंत्र; फिर आधुनिक युग की भाँति समुद्र-यात्रा के उपयुक्त विविध यंत्रों की तो कल्पना करना असम्भव ही था। स्थलखंड के समीप के समुद्र को तो ये जानते थे परन्तु अगाध महासागर के विस्तृत खंड में वे अपने पोत की स्थिति का पता नहीं लगा सकते थे। दिन में सूर्य और रात में चन्द्रमा वा तारे देख कर ही वे दिशा का ज्ञान प्राप्त कर सकते थे। ध्रुवतारा का भी उन्हें ज्ञान था। परन्तु जिस क्षेत्र में वे दौड़ लगाते थे, वहाँ वर्ष के अधिकांश महीनों और महीने के अधिकांश दिनों में आकाश कुहरे से घिरा रहता था; फिर भी योरप से आइसलैंड, ग्रीनलैंड, और अमेरिका तक इनके पोत पहुँचते थे।

जिस समय कोलम्बस के जलयानों ने अटलांटिक महासागर को पार कर नई दुनिया का पता लगाया था, उसके पाँच शताब्दी पूर्व ही ये लोग अपने जलयानों में उत्तरी महासागर को पार कर नई दुनिया में पहुँच चुके थे, यह सुनकर हमें कौतूहल होगा परन्तु सचमुच ही ये विलक्षण पुरुष थे। इनके जलयान तो काठ के ही बने होते थे परन्तु ये उनसे लौह पोत का काम निकालना चाहते थे। समुद्र में इनके पोत-संचालन के दो ही साधन थे; एक तो डाँड़ खेना, दूसरा पाल तान कर वायु के प्रवाह का अनुसरण करना। इनके जहाजों को परिचालित करने वाले डांड़ों की संख्या अधिक

होती थी और एक डाँड़ को तीन चार आदमी मिलकर चला सकते थे। अपने पाल का उन्हें बड़ा अभिमान था और उसपर ये भाँति भाँति का चित्र बनाते थे।

अज्ञात सागर में पथ-निदश के इनके जो साधन थे, उनका वर्णन बड़ा ही कौतूहल-पूर्ण है। बौद्ध जातकों में वर्णित भारतीय नाविकों की भाँति ये लोग भी महासागर-यात्रा करते समय अपने साथ जहाज पर पक्षी रखते थे। जब स्थल पर उतरने की आवश्यकता होती तो एक पक्षी को आकाश में उड़ा देते। वह आकाश में उड़ जाता और ऊपर से स्थलखंड को देखकर उसी ओर उड़ने लगता। इससे स्थलखंड का पता पाकर जहाज उस मार्ग का अनुसरण करते। समुद्र में एक प्रकार का पक्षी होता है जो स्थलखंड से १० या १५ मील से अधिक दूर नहीं जाता। मार्ग में उसे पाकर ये स्थलखंड के निकट होने का अनुमान कर लेते थे। इसके अति-रिक्त समुद्री सेवार, पानी में बहकर आई हुई लकड़ी, समुद्री पक्षियों की उड़ान और विशेष प्रकार के पक्षियों को देखकर भी मार्ग का पता लगा लेते थे। समुद्र के पानी का रंग देख कर भी मार्ग का पता लगता था। इसी प्रकार के साधन थे जिनकी सहायता से उत्तरी लोग तुषार-आच्छादित महासागर में यात्रा कर अपना शौर्य दिखलाते थे।

जिन उत्तरी लोगों में इतना अपूर्व कौशल और अदम्य साहस था, उनको भौगोलिक अन्वेषण-क्षेत्र में हम स्वभावतः ही विशेष संलग्न होने की आशा करते हैं। फलतः हम उत्तरी लोगों के उत्तरी

महासागर में बड़ी दूर तक पूर्व और पश्चिम में भीषण यात्रायें करने का वर्णन पाते हैं। इनका एक दल पूर्व की ओर चलकर उत्तरी ध्रुव प्रदेश में स्थित आरकेंजिल तक पहुँचा था और कहा जाता है कि इन्हीं लोगों ने दक्षिण में मैदान की ओर बढ़कर कालान्तर में रूसी जाति का जन्म दिया था। दक्षिण में वह भूमध्यसागर तक पहुँचते थे। उत्तर-पश्चिम की ओर चलकर इनका दल इंगलैण्ड, शटलैण्ड, आर्कनीज़ तथा फेरोज़ आदि द्वीपों को पार कर सन् ८७४ ई० में आइसलैंड पहुँचा था। धीरे धीरे आइसलैंड में इनकी संख्या ५०००० तक पहुँच गई थी।

आइसलैंड एक बहुत ही सर्द द्वीप है। बिल्कुल ध्रुव के निकट होने से यहाँ सदा बर्फ पड़ा करती है। पेड़-पौधे बिल्कुल नहीं होते। कोई फ़सल तैयार नहीं हो सकती। वनस्पति के नाम पर एक मामूली घास होती है। ऐसी भूमि में जानवरों के माँस और समुद्र की मछली के आहार पर ही यहाँ के निवासियों का जीवन निर्भर रह सकता है। परन्तु उत्तरी लोगों ने ऐसी ऊजड़ बर्फीली भूमि को भी ५०,००० की संख्या में अपनाया। यह उनकी रोमांचकारी जीवनचर्या का एक उदाहरण है। कहा जाता है कि उस समय उनके देश में हैरल्ड हार्फर नाम का एक राजा हुआ था जिसने कुछ कड़े राज-नियम बनाए थे। उसी से अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए वीर सरदारों ने स्वदेश छोड़ कर आइसलैंड सरीखे द्वीप में अपनी बस्ती बनाई थी।

इस बात का उल्लेख मिलता है कि उत्तरी लोगों के पूर्व कुछ

लोग आइसलैंड तक पहुँच सके थे, परन्तु पहले पहल उत्तरी लोगों ने ही वहाँ अपनी बस्ती बना कर उसे अपने कार्य-क्षेत्र का केन्द्र बनाया। यदि हम मानचित्र में उत्तरी अटलांटिक महासागर को ध्यान से देखें तो हमें योरप की भूमि से मिले इंगलैंड, आर्क-नीज़, शटलैंड तथा फ़ैरोज़ द्वीप आइसलैंड तक फैले हुए मिलेंगे। फिर आइसलैंड से लगभग ५० मील पश्चिम की ओर ग्रीनलैंड नाम का बर्फ़ीला द्वीप मिलेगा जो उत्तरी अमेरिका के समीप है। जब पहले पहल आइसलैंड में उत्तरी लोगों की बस्ती बस सकी तो वहाँ से तूफ़ान के वेग में किसी जहाज का आइसलैंड से ग्रीनलैंड तक पहुँच जाना सम्भव था। फलतः एक नाविक को हम ८७६ ई० में तूफ़ान द्वारा बहा दिए जाने पर ग्रीनलैंड के तट पर पहुँचा हुआ पाते हैं। परन्तु इस दुर्घटना के कारण नए ज्ञात देश तक कोई अन्य यात्री एक शताब्दी तक न पहुँच सका। सन् ९८३ ई० में एक दूसरी घटना हुई जिससे इस ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ।

लाल इरिक नाम के एक सरदार ने स्कैंडिनेविया में अपने कुटुम्ब के एक व्यक्ति को मार डाला था, इस कारण उसे निर्वासन का दंड हुआ। उसके साथ ही उसके बहुत से मित्र भी हो लिए। परन्तु आइसलैंड पहुँचने पर वहाँ वालों ने एक अपराधी को आश्रय देना उचित न समझा, इस कारण उसने ग्रीनलैंड की ओर यात्रा की। उसने पश्चिम की ओर यात्रा कर उस बर्फ़ से ढके बड़े द्वीप को देखा जो आज कल ग्रीनलैंड के नाम से

प्रसिद्ध है। वहाँ से लौटने पर अपने ऊजड़ उपनिवेश को बसाने की इच्छा से उसने उसे ग्रीनलैंड नाम से प्रसिद्ध किया। ग्रीनलैंड शब्द का अर्थ है हरा-भरा देश, परन्तु वास्तव में वह द्वीप हरा-भरा नहीं है प्रत्युत साल भर बर्फ से ढका रहता है। उसने इस नए द्वीप का नाम ऐसा इस लिए रक्खा जिससे लोग आकर्षित होकर वहाँ चल सकें। इसके फलस्वरूप उसके प्रलोभन में पड़ कर बहुत से लोग जहाजों पर उसके साथ हो लिए।

इस नूतन उपनिवेश को बसाने के लिए २५ जहाजों पर कुल यात्रियों ने प्रस्थान किया जिसमें १९ पोत मार्ग में ही विनष्ट हो गए परन्तु शेष सकुशल पहुँच सके। उन्होंने ग्रीनलैंड को अपना निवासस्थल बनाया जहाँ वे निरंतर चार शताब्दियों तक बसे रहे। उन्होंने अपने उपनिवेश की राजधानी गर्डर नाम का एक नगर भी बसाया। इन लोगों ने चार शताब्दियों तक ग्रीनलैंड में बस-कर वहाँ पत्थर के भवन निर्माण किये थे। वहाँ किसी प्रकार पहुँचने वाला यात्री उन भवनों के अवशेष अब भी देख सकता है जो उत्तरी लोगों की स्मृति दिलाते हैं।

ग्रीनलैंड में बस्ती बस जाने पर उत्तरी अमेरिका के भूखंड तक उत्तरी लोगों के जहाजों का पहुँचना स्वाभाविक ही था। फलतः जिस वर्ष यह उपनिवेश स्थापित हुआ उसी वर्ष हम उत्तरी लोगों के एक जहाज के अमेरिका महाद्वीप के पूर्वी तट पर पहुँचने का उल्लेख पाते हैं। इसकी कथा इस प्रकार प्रचलित है। लाल इरिक के साथियों में आइसलैंड का निवासी हरजुल्फ नाम का व्यक्ति

था जो उसके साथ ही ग्रीनलैंड में आया था। हरजुल्फ के जार्नी नाम का एक लड़का था। वह इन लोगों की यात्रा के समय नार्वे की ओर गया था। वहाँ से अपने पिता से मिलने के लिए जार्नी अपना जहाज लेकर आइसलैंड पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही उसे ज्ञात हुआ कि उसका पिता ग्रीनलैंड चला गया है। इस कारण वहाँ बिना उतरे ही ग्रीनलैंड की ओर रवाना हुआ। परन्तु यात्रा प्रारम्भ करते ही कुहरा छा गया और वेग से हवा बहने लगी। ऐसी अवस्था में रास्ते का कुछ ज्ञान बिना हुए ही वह कई दिन तक अपना जहाज़ चलाता रहा। वास्तव में वह आँधी के कारण ग्रीनलैंड के मार्ग से दूर अधिक दक्षिण बहकर आगे बढ़ रहा था। जब आँधी शान्त हुई और कुहरा दूर हो गया तो उसे भूखंड दिखाई पड़ा। परन्तु यह ग्रीनलैंड नहीं था।

इस भूमि में छोटी छोटी पहाड़ियाँ थीं जिस पर बहुत अधिक पेड़ उगे हुए थे और ग्रीनलैंड में उसने बर्फीले पहाड़ों का होना सुना था। इसके साथ ही वह बहुत अधिक दक्षिण पहुँच चुका था, इस कारण उसने अनुमान किया कि यह ग्रीनलैंड नहीं हो सकता। अतएव उसने उत्तर की ओर यात्रा करना प्रारम्भ किया। दो तीन दिन के पश्चात् उसे फिर भूमि दिखाई पड़ी परन्तु इसमें भी वृक्षों की बहुतायत थी, इस कारण उसे निश्चय हुआ कि यह ग्रीनलैंड नहीं है। यहाँ भी न उतर कर उसने तीन दिन तक उत्तर की ओर यात्रा की। फिर तीसरी बार उसे भूमि दिखलाई पड़ी परन्तु वहाँ भी न उतर कर वह और आगे बढ़ा। चार दिन तक

और यात्रा करने पर उसे ग्रीनलैंड मिल सका।

यद्यपि ठीक ठीक यह बता सकना बड़ा कठिन है कि जार्नी ने तीन बार जिन भूखंडों को देखा वह कौनसी भूमि थी तथापि यह विश्वासनीय जान पड़ता है कि पहला स्थान संयुक्त राज्य के बोस्टन नगर के नीचे का समुद्रतट, दूसरा नोवा स्कोटिया और तीसरा न्यूफाउंडलैंड होगा। इन स्थानों के विषय में चाहे जो बात हो परन्तु इतना तो निश्चय ही है कि जार्नी ही अटलांटिक महासागर पार कर अमेरिका महाद्वीप तक पहुँचने वाला पहला योरोपीय था जिसने इस भूखंड को देखा।

जब कुछ दिनों के पश्चात् ग्रीनलैंड में रह कर जार्नी नार्वे पहुँचा और उसने वहाँ वालों को अपनी यात्रा में तीन बार मिले इस अज्ञात भूखंड का वर्णन किया तो लोगों ने उसे बड़े विस्मय के साथ सुना। एक सरदार ने उससे यह भी कहा कि जब तुम्हें नया भूखंड दिखाई पड़ा तो तुमने उसके भीतर जाकर उसके संबंध में कुछ और बातें क्यों नहीं ज्ञात कर लीं ? लाल इरिक के पुत्र लीफ़ इरिकसन ने भी जार्नी की सब बातों को सुना। उसे इन नए भूखंडों का वर्णन सुनकर उनको देखने के लिए इतनी अधिक उत्कंठा उत्पन्न हुई कि उसने तुरन्त ही जार्नी से उसका जहाज खरीद लिया और ३५ आदमियों के साथ यात्रा प्रारम्भ कर दी।

पहले लीफ़ इरिकसन का जहाज ग्रीनलैंड पहुँचा। वहाँ से यह दक्षिण पश्चिम की ओर चला। पहले इन लोगों को एक ऊसर भूखंड मिला जो लैब्रेडर का तट था। इसके पश्चात् न्यूफाउंडलैंड

द्वीप मिला। वहाँ से चलकर ये लोग नोवा स्कोटिया के समीप पहुँचे। नोवा स्कोटिया के पश्चात् इन्हें अमेरिका महाद्वीप की विस्तृत भूमि के दर्शन हुए। वहीं एक स्थान पर उतरकर इन्होंने एक घर बनाया। यहाँ की सुन्दर भूमि देखकर इन्हें बहुत ही अधिक प्रसन्नता हुई। इस भूखंड में नदी और झीलों का बाहुल्य था। भूमि बहुत ही उर्वर थी और घास इतनी अधिक उगी हुई थी कि उनके पशु सालभर तक उसपर अपना निर्वाह कर सकते थे। इन सब बातों के साथ ही वहाँ अंगूर भी बहुत अधिक मात्रा में उत्पन्न होता था, इस कारण इन लोगों ने इस देश का नाम ही वाइनलैंड अर्थात् अंगूरों का देश रक्खा।

इतनी सुरम्य भूमि और मनोहर जलवायु देखकर इन लोगों ने जाड़े की ऋतु वहीं व्यतीत करने का निश्चय किया। इस प्रकार सन् १००० ई० में अमेरिका महाद्वीप की भूमि पर पहले योरोपीय यात्री ने निवास किया। इन यात्रियों ने लिखा है कि यहाँ पर सूर्य ७॥ बजे उदय होता था और ४॥ बजे अस्त होता था, इस कारण उसके अक्षांश और देशान्तर को ज्ञात कर यह स्थान नोवास्कोटिया के समीप फाल नदी के मुहाने पर ठहरता है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि यह अंगूरों का देश फाल नदी के मुहाने के समीप ही होगा।

जाड़े की ऋतु वाइनलैंड में ही व्यतीत कर दूसरे वर्ष लीफ़ इरिकसन अपने साथियों के साथ ग्रीनलैंड चला गया। वहाँ जब उसने इस देश का वर्णन किया तो लोगों में बड़ी सनसनी फैल गई।

लीफ के वर्णन को उसके भाई थोर्वाल्ड ने बड़ी उत्कंठा से सुना। जब उसको लीफ ने बहुत अधिक उत्सुक देखा तो कहा कि यदि तुम्हें उस देश के सम्बंध में इतनी अधिक उत्कंठा है तो मेरा जहाज लो और स्वयं उसे देख आओ।

थोर्वाल्ड अपने भाई के उदारता के व्यवहार पर उछल पड़ा और उसने अगले वर्ष सन् १००२ ई० में ही कुछ साथियों के साथ वाइनलैंड की यात्रा की। वहाँ पर ये लोग तीन वर्ष तक बसे रहे परन्तु वहाँ के मूल निवासियों ने इन नव-आगन्तुकों पर हमला किया जिसमें इन्होंने मूल निवासियों को मार तो भगाया परन्तु इस संघर्षण में थोर्वाल्ड की छाती में एक बाण लगा जिससे उसकी मृत्यु हो गई। उसके शव को वहीं पर समाधिस्थ कर उसके साथी ग्रीनलैंड को लौट गए।

थोर्वाल्ड की इस यात्रा के लिए एक दृढ़ प्रमाण मिलता है। जब कोलम्बस के अमेरिका में पहुँचने के पश्चात् योरप-निवासियों ने अमेरिका की भूमि में बसना प्रारम्भ किया तो सन् १८३१ ई० में उन्हें फाल नदी के समीप कवच के साथ एक मनुष्य की ठटरी मिली। यह निश्चय ही थोर्वाल्ड इरिकसन की ठटरी थी जो योरप से आकर उत्तरी अमेरिका में निवास-स्थान बनानेवाला पहला योरोपीय था।

थोर्वाल्ड की मृत्यु के पश्चात् भी उत्तरी लोगों ने अमेरिका महाद्वीप में जाकर बसने का विचार न छोड़ा। सन् १००६ ई० में थार्फिन कार्लसेफाइन नाम का एक सरदार नार्वे से ग्रीनलैंड

आया। उसने गुडरिड नाम की एक महिला से विवाह किया। गुडरिड एक साहसी, विचारशील और विचित्र महिला थी। उसने अपने पति से वाइनलैंड में जाकर बसने का अनुरोध किया। फलतः १५१ पुरुष और ७ स्त्रियों को साथ लेकर जाने के लिए थार्फिन तैयार हुआ। दूसरे वर्ष ये लोग नए देश में पहुँचे। अपने साथ में ये अपने ढोर भी लेते गए थे। वे वाइनलैंड में सकुशल पहुँचकर बस गए परन्तु शीघ्र ही वहाँ के मूल निवासी एस्किमों लोगों ने इन पर आक्रमण किया। उनके आक्रमण का इनका छोटा समुदाय सामना न कर सका और ये लोग वहाँ से भगा दिए गए परन्तु चलते समय इन्होंने अपना एक चिह्न छोड़ दिया। वह एक पत्थर पर खुदी पंक्ति थी जिसमें १५१ की संख्या बनी थी और एक वाक्य खुदा था जिसका अर्थ यह था कि १५१ व्यक्तियों ने इस देश पर अधिकार जमाया। वह पत्थर आधुनिक अन्वेषकों को मिल सका है।

इन प्रयत्नों के पश्चात् भी उत्तरी लोगों ने सन् १३४७ ई० तक कई बार वाइनलैंड में उपनिवेश स्थापित करने के लिए प्रयत्न किया परन्तु इन्हीं दिनों योरप में एक संक्रामक रोग महामारी या प्लेग का प्रकोप हुआ। किसी प्रकार यह आइसलैंड, ग्रीनलैंड और वाइनलैंड तक भी पहुँच गया। इस बीमारी का जितना भयंकर परिणाम हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सम्पूर्ण योरप की एक तिहाई मनुष्य-संख्या कम हो गई। नार्वे में २० लाख मनुष्यों में से केवल ४ लाख ही बच रहे। इस कारण

उत्तरी अटलांटिक महासागर के आइसलैंड और उत्तरी अमेरिका के वाइनलैंड तक पहुँचने के लिए मनुष्य ही नहीं रह सके। उन उपनिवेशों के निवासी भी इस रोग से आक्रान्त हुए और धीरे धीरे उन उपनिवेशों का सर्वथा लोप हो गया।

६—चीन में वेनिस का व्यापारी



नीशियन, यनान, कार्थेज और रोम साम्राज्य का अवसान हो जाने पर ईसा की छठवीं शताब्दा से १२वीं शताब्दी तक जब योरप में अन्धकार युग का आधिपत्य था, उस समय सम्पूर्ण संसार में प्रत्येक प्रकार के ज्ञान का ह्रास होने से भौगोलिक ज्ञान भी आगे बढ़ने को कौन कहे, उलटे बहुत न्यून हो गया था। इस अवधि में स्कैंडिनेविया प्रायद्वीप से आगे बढ़ कर केवल उत्तरी लोगों ने आइसलैंड, ग्रीनलैंड और वाइनलैंड तक पहुँच कर भौगोलिक ज्ञान की वृद्धि की थी परन्तु इस अन्धकार युग के पश्चात् ही तेरहवीं शताब्दी में एक नई शक्ति ने जन्म लिया जिसने योरप और एशिया में युगान्तर उपस्थित कर दिया। इसके कारण बड़ी से बड़ी शक्तियों का हृदय काँप उठा, मुसलमानी सत्ता की नींव हिल उठी। इस शक्ति को उत्पन्न करनेवाले एशिया के पूर्वी भाग के मंगोल (तातार) लोग थे जिनकी जन्मभूमि मंगोलिया थी।

इनकी प्रलयकारिणी सेना ने मध्य एशिया की सारी भूमि को अधिकृत कर योरप में आस्ट्रिया हंगरी तक धावा बोलना आरम्भ कर दिया। सारे चीन पर इनका प्रभुत्व हो गया और आधे फारस तथा रूस के प्रदेशों पर भी इनका शासन-चक्र घूमने लगा। इन लोगों के सरदार चंगेज़ ख़ाँ का नाम भूलने योग्य नहीं। उस नाम को याद कर आज भी लोगों का हृदय दहले बिना नहीं रह सकता। जीवन-पर्यन्त तो इसने अपने भीषण आक्रमणों से एशियाई और योरोपीय देशों को त्रस्त किया ही, मरने के समय भी भूमंडल के शेष भागों पर धावा करने के लिए अपने उत्तराधिकारियों को उपदेश दे गया। उनमें से तैमूरलंग ने चंगेज़ ख़ाँ के मरने के समय की भीषण अभिलाषा पूरी करने के लिए उत्तरी भारत को पदाक्रान्त कर तातारी आक्रमणों की भयंकरता का उदाहरण लोगों के सामने रक्खा।

भविष्य में होनेवाले तातारी लोगों के आक्रमणों का अनुमान कर हंगरी और पोलैंड के आक्रमणों के पश्चात् ही सारा योरप सजग हो उठा था। यद्यपि इनके आक्रमणों में मुसलमानी राज्यों के प्रति ही रोष अधिक प्रकट होता था और मुसलमानी राज्यों के आक्रमण के साथ ईसाई राज्यों से अधिक सहानुभूति का आभास मिलता था तथापि योरोपीय देश मंगोल लोगों से कम भय-भीत नहीं थे। इस कारण भावी आक्रमणों की आशंका दूर करने के लिए सम्पूर्ण ईसाई-संसार प्रयत्न करने लगा। इसके लिए ईसाइयों ने तातार सर्दारों को ईसाई धर्म में दीक्षित कर लेने के लिए

समय समय पर उपदेशकों को भेजना प्रारम्भ किया। उनमें जोन डी प्लेनो कार्पीनी का नाम विशेष प्रसिद्ध है।

इसी प्रकार धार्मिक उत्साह में कितने ईसाई साधु वा उपदेशकों ने मंगोलिया तक के कठिन मार्ग को पार करने का साहस किया और अब मंगोल लोगों के आक्रमणों के परिणाम-स्वरूप कितने यात्रियों का नाम सुनाई पड़ने लगा। इस प्रकार कई शताब्दियों के पश्चात् तेरहवीं शताब्दी में भौगोलिक ज्ञान की वृद्धि करने की ओर लोग आकृष्ट होने लगे। इन्हीं दिनों उपदेशकों के पश्चात् बहुत से अन्य यात्रियों ने भी यात्रा करना प्रारम्भ किया परन्तु इन यात्राओं के लिए प्रेरित करने वाला एक दूसरा ही प्रलोभन था।

उन दिनों व्यापार-क्षेत्र में वेनिस नगर की तूती बोल रही थी। अपनी अनुकूल स्थिति के कारण वह बड़े महत्व का नगर था, एड्रियाटिक सागर के उत्तरी किनारे पर स्थिति होने के कारण भूमध्य सागर की पूर्वी और पश्चिमी सीमाओं के मध्य तो था ही, उत्तर में आल्प्स पर्वत का वह दर्रा भी समीप ही था जहाँ से राइन और डैन्यूब नदियों की घाटियों को मार्ग जाता था। इन कारणों से वेनिस के सौदागर योरप के सभी अन्य नगरों से अधिक श्रीसम्पन्न हो गए थे। एशिया के पूर्वी देशों से आया हुआ सब माल वेनिस से अन्य स्थानों को पहुँचाया जाता था। भूमध्य सागर के सभी मार्गों में वेनिस की नौकाएं दौड़ती थीं।

इसी नगर के कुछ व्यापारियों ने व्यापार में अधिक

सफलता प्राप्त करने की अभिलाषा से स्थल-मार्ग से चीन के धनागार तक पहुँचने के लिए बीहड़ भूमि-खंडों को पार करने का साहस किया। उनमें मार्को पोलो का नाम बड़ा प्रसिद्ध है।

अज्ञात संसार के अनुसन्धान-क्षेत्र में मार्को पोलो की यात्रा का बड़ा महत्व है। यों तो मंगोलिया के तातार सरदार तक पहुँचने के लिये मार्को पोलो के पहले कितने ईसाई पादरियों ने मध्य एशिया को पार किया था परन्तु उनके चीन आने जाने का कोई विशेष फल न निकला। उनकी यात्रा से भौगोलिक अनुसन्धान में विशेष लाभ नहीं हुआ। मार्को पोलो की यात्रा इस प्रकार की नहीं थी। इसकी यात्रा ने एशिया के सम्बन्ध में योरप के लोगों की आँखें खोल दीं। इसीने पहले पहल ईसाई-संसार के सामने चीन, इन्दोचीन, भारत और पूर्वी द्वीप-समूह के वाणिज्य और धनागार के वैभव और सौन्दर्य को भलीभाँति बड़े विशद रूप में रक्खा। इसी के कौतूहलपूर्ण वर्णन से योरपवालों ने ज्ञात किया कि एशिया के इन भू-भागों में कितना प्रचुर धन भरा पड़ा है और उन देशों के साथ सीधे व्यापार करने से कितनी सम्पत्ति प्राप्त हो सकती है।

एशिया महाद्वीप के ओर से छोर तक की यात्रा करनेवाला पोलो ही पहला योरोपीय यात्री था जिसने उन सभी देशों का वर्णन किया जिनको उसने अपनी आँखों से देखा। मेसोपोटामिया, फ़ारस, मध्य एशिया की अधित्यका, गोबी की मरुभूमि,

मंगोलिया के मैदान और चीन के समुद्र-तट तक के देशों का उसने पूरा विवरण लिखा। इस कारण मार्को पोलो की यात्रा का भौगोलिक अनुसन्धान के इतिहास में बड़ा उच्च स्थान है। इस यात्रा की कहानी इस प्रकार प्रसिद्ध है।

ईसा की तेरहवीं शताब्दी में मार्को पोलो के पिता निकोले और चचा मेफ़ियो यात्रा करते हुए रूस के दक्षिणी प्रान्त में पहुंचे। वहां से उन्होंने चीन के तातार सरदार कुबला ख़ाँ के दरबार में जाने का विचार किया। जब मार्ग के बीहड़ प्रान्त को पार कर के ये कुबला ख़ाँ के दरबार में पहुँचे तो उसने इनका बड़ा आतिथ्य-सत्कार किया। उन्होंने ख़ाँ के पूछने पर योरप के राज्यों, उनके राजाओं और युद्ध-सेना का विस्तारपूर्वक वर्णन किया और रोम के पोप, चर्च के संगठन तथा इटली निवासियों की रहन-सहन का ज्ञान कराया। इन सब बातों को सुनकर ख़ाँ को बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने पोप के पास संदेश भेजना निश्चित किया।

इन लोगों ने जब उसका दूत बनना स्वीकार किया तो उसने इनके साथ अपना एक आदमी कर दिया और पोप के नाम एक पत्र लिखवाया जिसमें उससे ईसाई-धर्म के १०० विद्वान् पादरियों को भेजने की प्रार्थना की जो ईसाई-धर्म के सिद्धान्तों को सिद्ध कर सकें। अपने दूतों से ख़ाँ ने यह भी प्रार्थना की कि वे उसके लिये उस लैम्प का थोड़ा तेल लेते आवें जो ईसा मसीह की समाधि पर यरूसलम में जलता था। मार्ग में इन दूतों की सुविधा

और रक्षा के लिए उसने एक स्वर्णपट्टिका दी जिस पर यह खुदा हुआ था कि जिन प्रान्तों में हो कर ये राजदूत जायँ उनमें इनको सब प्रकार की सुविधा दी जाय। खाँ सम्पूर्ण तातार-साम्राज्य का शासक था, इसलिए इस आज्ञा का उन सभी देशों में पालन हो सकता था।

यात्रा प्रारम्भ करने के पश्चात् खाँ का भेजा हुआ आदमी रुग्ण होकर लौट गया। इस कारण निकोलो और मेफियो ही साथ लौटे। मार्ग में खाँ की आज्ञा के कारण उनके लिए सब आवश्यक वस्तुएँ मिलती रहीं, परन्तु बर्फ पड़ने, भयंकर नदियों के मिल जाने और बीहड़ मार्ग के कारण इस यात्रा में ३ वर्ष लगे। अपने देश लौटने पर इन लोगों को ज्ञात हुआ कि पोप की मृत्यु हो गई है। इस कारण नए पोप के निर्वाचित होने तक चीन की दूसरी यात्रा स्थगित रखने के लिए इन्हें विवश होना पड़ा। परन्तु निर्वाचन में अधिक विलम्ब होने के कारण इन लोगों ने दो वर्ष के पश्चात् दूसरे पोप के निर्वाचित होने के पूर्व ही यात्रा प्रारम्भ कर दी।

चीन की इस दूसरी यात्रा में अपने पिता और चचा के साथ मार्को पोलो ने भी चलने का साहस किया। इन लोगों ने ईसाई पादरियों को साथ ले चलने के लिए प्रयत्न किया परन्तु उसमें सफलता न मिली। इन लोगों के प्रस्थान करने के कुछ ही समय पश्चात् नये पोप का निर्वाचन हो गया, इस कारण इन यात्रियों को पोप ने मार्ग से लौटा कर कुबला खाँ के नाम एक पत्र दिया

और जहाँ कुबला खाँ की १०० विद्वानों की माँग थी वहाँ केवल दो ईसाई धर्म-विशारद भेजे जा सके। परन्तु वे भी मार्ग से ही लौट आए।

ये लोग अर्मीनिया और फ़ारस की मरुभूमि को पारकर बल्ख़ पहुँचे जो मध्य एशिया में आमू नदी की घाटी का प्रधान नगर था। यहाँ पर फ़ारस राज्य का अन्त होता था।

बल्ख़ के पश्चात् ये लोग उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ बदख़शाँ नगर था, जिसके समीप केवल पहाड़ की गुफाओं में और पर्वतों पर दिन काटनेवाले ही मिल सकते थे। उन्हें भी निरन्तर लुटेरों का डर बना रहता था। नगरों के स्थान पर शेर, चीते, चील और जंगली हरिणों का निवास था। जंगली जानवरों का आखेट कर ही मनुष्य उदरपूर्ति कर सकता था। इसके आगे ऐसी भूमि थी जहाँ फल और अनाज की बहुतायत थी और नमक इतनी प्रचुर मात्रा में था कि सारा भूमंडल प्रलय-पर्यन्त उसका उपभोग कर सकता था। यहाँ के रमणीय जलवायु ने पोलो के उन शारीरिक विकारों को दूर कर दिया जो सूर्य के अत्यधिक ताप और फ़ारस की यात्रा के कारण उत्पन्न हुए थे। इन पर्वतीय स्थानों के रमणीय दृश्य का आनन्द उठाने के लिए किसी समय हारूँ रशीद की रानी वसन्त ऋतु में यहाँ निवास किया करती थी, जब बग़दाद के ख़लीफ़ा का इन सभी स्थानों पर आधिपत्य था। चारों ओर हरे भरे मैदानों की हरियाली, वृक्षों के बाहुल्य और पर्वतीय घाटियों से प्रवाहित सोतों के मन्द मन्द कलरव के कारण इस पर्वतीय

स्थान का दृश्य बड़ा ही मनोहारी था। यहाँ के पवित्र जलवायु को देख एक बार अमरावती की सुधि हो आती थी।

यहां से आगे बढ़कर वाम पार्श्व की ओर कश्मीर और उद-याना प्रदेश दिखाई पड़े जिनके सौन्दर्य की धाक आज भी संसार के रमणीय पर्वतीय प्रदेशों की यात्रा करनेवालों के हृदय पर जमे बिना नहीं रह सकती। अपने विलक्षण सौन्दर्य के कारण ये प्रदेश सदा से प्रसिद्ध रहे हैं। हिमालय पर्वत ने अपने सौन्दर्य-भांडार को इन्हीं प्रदेशों को अर्पित कर दिया था। प्राचीन काल में बौद्ध भिक्षुओं ने यहीं से चल कर तिब्बत, मध्य एशिया और अफ़गा-निस्तान में निवास करनेवालों को भगवान बुद्ध के धर्म में दीक्षित किया था। मार्को पोलो ने यद्यपि इन प्रदेशों को अपनी आँखों से नहीं देखा, तथापि जनश्रुतियों के आधार पर उसने इनका जैसा विशद वर्णन किया है, वह सर्वथा इन्हीं के योग्य है।

और आगे चलकर पामीर की अधित्यका मिली, जो संसार का सर्वोच्च स्थान बताया जाता है। उसके सम्बन्ध में पोलो ने लिखा है कि इस संसार की छत पर हरियाली का कहीं नाम नहीं है, सब उजाड़ खंड है। इतनी अधिक उंचाई और ठंड के कारण पक्षी नहीं दिखाई पड़ते। यदि आग जलाई जाय तो उसकी गर्मी और चमक थोड़ी जान पड़ती है।

इसके पश्चात् ही मध्य एशिया के नीचे मैदान दिखाई पड़े, जिनमें काशग़र, यारक़न्द और ख़ुत्तन बड़े नगर हैं। आगे बढ़कर गोबी का बीहड़ रेगिस्तान आया जिसकी निरन्तर एक मास यात्रा

करने में मनुष्य का कहीं नाम-निशान नहीं मिलता। इस कारण यात्रा के लिए एक मास का भोजन ले कर आगे बढ़ने का साहस हो सकता था। पोलो ने लिखा है कि इस मरुभूमि की यात्रा एक वर्ष की है, जिसमें सर्वत्र पर्वत, रेत और खोह के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वहां किसी तरह के भी जन्तु नहीं पाये जाते, क्योंकि खाने को कहीं कुछ भी नहीं मिलता। ऐसी कठिनाई को पार कर पोलो ने अपनी यात्रा समाप्त की।

जब ये तीनों कुबला खाँ के दरबार में पहुँचे तो उसने बड़े प्रेम से इनका सत्कार किया। इनके साथ मार्कोपोलो को देखकर उसके आनन्द का ठिकाना नहीं रहा। उसे इन लोगों ने ईसा की समाधि पर जलने वाले लैम्प का तेल तो दिया परन्तु धर्म-विशारदों को न ला सकने के कारण खेद प्रकट किया। खाँ ने इन लोगों को अपने दरबार में रख लिया। कुछ ही दिनों में मार्को पोलो को एक उच्च राजकीय पद प्राप्त हो गया।

मार्को पोलो के साहस और चातुर्य को देखकर खाँ ने उसे अपनी ओर से चीन के सभी प्रान्तों में भ्रमण करने का आदेश दिया। इन यात्राओं से पोलो को चीन देश भली-भाति देखने का अवसर मिला। इस अवसर से लाभ उठाकर उसने इसकी समृद्धि और सौन्दर्य का अपनी यात्रा के विवरण में ऐसा सजीव चित्र खींचा कि योरप-निवासियों ने इस विवरण से प्रभावित होकर इन स्थानों को खोजने के लिए बड़े बड़े महासागरों को पार करने का साहस किया और इसी के फल-स्वरूप कितने नए देशों का

पता लगा। पोलो ने चीन का जैसा वर्णन किया, वह वास्तव में बड़ा चित्ताकर्षक था। जब मंगोल सम्राट कुबला खाँ की राजधानी पेकिंग से उसने भिन्न भिन्न प्रान्तों की यात्रा की तो उसे प्रायः सभी बड़े नगरों में जाने का अवसर मिला, नदी और पर्वतों का दृश्य देखने को मिला और प्रधान पथों का ज्ञान प्राप्त हुआ।

मार्को पोलो ने चीन में १७ वर्ष व्यतीत कर चीन देश को भली भाँति देखा। घर लौटने की इच्छा प्रकट करने पर कुबला खाँ इसे विदा करना नहीं चाहता था। निदान फ़ारस के राजा से कुबला के कुटुम्ब के एक कन्या की सगाई हुई। उसे पहुँचाने के लिए मार्को पोलो चीन से विदा किया जा सका। कुबला ने उससे लौटने का बचन लेकर जाने की अनुमति दी। लौटती बार उसने भारत होकर समुद्र-मार्ग से यात्रा की।

चीन के पूर्व में जापान के समृद्धिशाली द्वीप हैं। पोलो ने उनको स्वयं नहीं देखा, परन्तु उनके धन की प्रशंसा सुनकर बड़ा विशद वर्णन लिखा। देश में सोना भरा हुआ था। लोग कहते थे कि राजा के महल की खिड़कियाँ सोने की हैं, दो अंगुल मोटे बहुमूल्य धातु फर्श तथा छतों में मढ़े हुए हैं। केवल यही नहीं, जापानियों के पास मोती और जवाहिरों की भी कमी नहीं थी।

जापान के इस कौतूहलपूर्ण विवरण को कोलम्बस ने नई दुनिया को खोज निकालने के पहले ध्यान-पूर्वक पढ़ा था। इस स्वर्ण-भूमि में पहुँचने और भारत का मार्ग खोज निकालने की लालसा से उसने अटलांटिक महासागर को पार करने का साहस

किया। इस स्वर्णभूमि की उत्कण्ठा ने उसके असीम साहस के पुरस्कार-स्वरूप उसको एक नई दुनिया का दर्शन करा दिया।

जापान के अतिरिक्त सुमात्रा, जावा और भारत का भी पोलो ने विवरण लिखा। जब इतने दिनों के पश्चात् पोलो और उसके पिता तथा चचा वेनिस पहुँचे तो इन्हें लोग पहचान न सके। उनको किसी प्रकार वहाँ आश्रय मिल सका। कुछ ही समय में वेनिस पर आक्रमण हुआ और दूसरों के साथ ये लोग भी बन्दी कर लिए गए। पोलो ने बन्दीगृह में ही अपनी यात्रा का विवरण लिपिबद्ध किया। लोगों में उस विवरण के वितरित होने का क्या परिणाम हुआ, इसका ज्ञान अगली शताब्दी के यात्रियों की कहानियाँ ही स्वयं करा सकती हैं।

७--अन्वेषण-जगत् में युगान्तर



गोलिक अन्वेषण के इतिहास में ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी बहुत ही महत्वपूर्ण है। आज हम लोगों को भूमंडल के कोने कोने का ज्ञान हो सकने में जो सफलता मिल सकी है, इस नवयुग को लाने में इसका बहुत कुछ श्रेय है। इसी शताब्दी ने अटलांटिक महासागर पार कर कोलम्बस को नई दुनिया में पहुँचते देखा था और अफ्रिका महाद्वीप के दक्षिणी छोर की डियाज़ द्वारा खोज और पुर्तगाल के लिस्बन नगर से

भारत के कालीकट नगर तक वास्को डि गामा की समुद्र-यात्रा का अनुभव किया था। इन यात्राओं के लिए इस शताब्दी में मनुष्य के हृदय को कौन से भाव उत्तेजित कर रहे थे, उनका विवरण बड़ा ही हृदयग्राही और मनोरंजक है।

जिस समय योरोपीय देशों से मध्य एशिया होते हुए चीन तक ईसाई उपदेशकों, व्यापारियों वा अन्य यात्रियों ने स्थल मार्ग से यात्रा करना आरम्भ किया, उस समय उन्हें इसके वैभव को अपने नेत्रों से देखने का सौभाग्य मिला था। उन्होंने अपने देश में लौटने पर विशाल नगरों, ऐश्वर्यशाली राजप्रासादों और अपार धन की ऐसी कथाओं को सुनाना प्रारम्भ किया था कि योरप के लोग उन्हें सुन सुन कर स्तब्ध हो गए थे। उनके हृदय में इस अपार धनागार तक पहुँचने की बेचैनी छा रही थी। इन यात्रियों के वर्णनों में मार्को पोलो की पुस्तक ने बड़ी सनसनी फैला दी थी। वह यात्रा के वर्णन के अतिरिक्त चीन के वैभव के प्रमाण-स्वरूप अपने साथ अत्यधिक बहुमूल्य रत्न और असीम धन भी लेता आया था।

चीन के वैभव का वर्णन जितना लोगों में एक अपूर्व लहर फैला रहा था, उसके साथ ही और भी किम्वदन्तियाँ प्रचलित हो रहीं थीं, जिन्होंने प्रज्वलित वह्नि में घृत का काम दिया। चीन से लौटे हुए एक यात्री ने लिखा था कि चीन के समीप ही एक ऐसा प्रान्त है जहाँ मनुष्य कभी भी वृद्धावस्था को प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार कई किम्वदन्तियों के आधार पर यह बात प्रचलित

थी कि इस पृथ्वी पर ही कहीं इन्द्र का स्वर्ग और नन्दन बन हैं, जहाँ मनुष्य मनोवांछित फल और संसार भर का ऐश्वर्य प्राप्त कर सकते हैं। इस किम्वदन्ती का बहुत से विचारशील पुरुषों ने भी समर्थन किया था। फलतः लोगों का दृढ़ विश्वास हो चला था कि इन्द्रपुरी और नन्दन बन कहीं चीन के समीप ही अवस्थित हैं। इस काल्पनिक पृथ्वी पर की इन्द्रपुरी और नन्दन बन तथा समृद्धिशाली चीन देश तक सुगमतया पहुँचने के लिए ही लोगों की व्यग्रता में पन्द्रहवीं शताब्दी ने प्रचण्ड रूप धारण कर यात्रा में युगान्तर उपस्थित कर दिया।

इन बातों को छोड़ कर योरप में अन्वेषण-जगत में युगान्तर लाने के लिये अन्य बातें भी आ उपस्थित हुई थीं। चौदहवीं शताब्दी में एशियाई तुर्की में तुर्क लोगों का ज़ोर बढ़ रहा था। सन् १३६५ ई० में उनके थ्रेस और रूमानिया तक आक्रमण हुए और एड्रियानोपुल अधिकृत हो गया। अन्त में सन् १४५३ ई० में एशिया और योरप के व्यापार का मुख्य द्वार कुस्तुंतुनिया पर भी उन्होंने अधिकार जमा लिया।

यह घटना जिनोआ और वेनिस दोनों के लिए बड़ी ही घातक हुई। एशिया के पूर्वी देशों के व्यापार का मार्ग बिल्कुल बन्द हो गया। कुस्तुंतुनिया के तुर्कों के अधिकार में आजाने से सिकं-दरिया होकर एशिया के देशों तक व्यापार का एक मात्र मार्ग ही बच रहा था परन्तु तुर्क लोग इस ओर भी बढ़ते आ रहे थे। साथ ही उसका शासक मुसलमानों का दूसरा समुदाय भी एशि-

याई देशों से आनेवाले पदार्थों पर योरोपीय व्यापारियों से बहुत अधिक कर वसूल करता था। परन्तु कभी कभी बुराई से भी भलाई हो जाया करती है। जिस समय योरप का एशिया से व्यापार का स्थल मार्ग बन्द हो रहा था, उसी समय सभ्यता के बढ़ने से लोगों की आवश्यकताएँ बढ़ती जा रही थीं और पूर्वी देशों से आनेवाले पदार्थों के लिए वे अधिकाधिक पुकार मचा रहे थे। इन वस्तुओं को किसी न किसी प्रकार उन लोगों तक पहुँचाना ही था। इन्हीं आवश्यकताओं की वृद्धि के समय तुर्की के आक्रमण से व्यापारिक मार्ग बन्द हो जाने पर व्यापारिक जगत की दृष्टि एक दूसरी ओर ही आकर्षित हुई और स्थल मार्ग छोड़ कर वीर नाविकों ने एशियाई देशों तक के लिए समुद्री मार्गों की खोज करना प्रारम्भ किया। इन्हीं प्रयत्नों के फलस्वरूप बड़े बड़े महासागरों की भीषण यात्राएँ हो सकीं और नूतन महादेशों और समुद्री मार्गों का ज्ञान हुआ।

इस नूतन प्रयत्न में पुर्त्तगालवालों ने पहले-पहल अपना झंडा ऊँचा किया। पुर्तगाल और स्पेन दोनों ही अधिक दिनों तक मूर लोगों के आधीन रहने के कारण अपने ऊपर से उनका शासन हटाने के प्रयत्न में लगे हुए थे। इनमें पुर्तगाल स्पेन के पहले ही मूरों से अपना पिण्ड छुड़ाने में इस समय तक सफल हो चुका था। इस कारण उसे विशेष उन्नति करने का अवसर था। उनका इंग्लैंड प्रभृति देशों में आवागमन प्रारम्भ हो गया था। उनका देश भूमध्य सागर तथा अटलांटिक महासागर के समीप स्थित होने के

कारण नाविक विद्या के लिए अधिक उपयुक्त था। इस कारण इस देश के नाविकों ने बड़ी उन्नति दिखाई।

इस समय के पूर्व एशियाई देशों के अतिरिक्त योरप में भी फीनीशियन और उत्तरी लोगों ने समुद्र-यात्रा का बहुत कुछ अनुभव प्राप्त किया, था परन्तु उनका ज्ञान भूला जा चुका था और इस समय लोगों को नाविक विद्या के सम्बन्ध में जितना अनुभव और ज्ञान था वह भीषण और लम्बी यात्राओं के लिए सर्वथा अपर्याप्त था। लोग समुद्र-तट के किनारे किनारे ही कुछ दूर तक जहाजों को चलाते थे। खुले समुद्र में दूर तक की यात्रा कल्पना से बाहर की बात थी। लोगों को बहुत सी बातें ज्ञात नहीं थीं जिनका ज्ञान महासागर की यात्रा के लिए बहुत ही आवश्यक था। ठीक ठीक मानचित्रों का अभाव था जो समुद्र-यात्रा के लिए इतने अधिक आवश्यक हैं। जो मानचित्र सुलभ थे, वे काल्पनिक और भ्रामक होते थे। उदाहरणार्थ सिकन्दरिया के एक विद्वान क्लाडि-यस टोलिमियस (टोलेमी) ने भूमंडल का एक मानचित्र बनाया था जिसमें हिन्द महासागर स्थल से घिरा हुआ माना गया था। इसके दक्षिण में एशिया और अफ्रिका महाद्वीप मिले हुए दिख-लाए गए थे। एशिया महाद्वीप को वह पूरब की ओर बहुत दूर तक फैला हुआ समझता था। ऐसी दशा में भारत तक समुद्र-मार्ग से पहुँचना असम्भव था परन्तु इसके विपरीत पाम्पोनियस मेला नाम के विद्वान ने उद्घोषित किया था कि एशिया और अफ्रिका दोनों समुद्र से घिरे पृथक पृथक भूखंड हैं अतएव अफ्रिका के

किनारे का चक्कर काटकर एशिया महाद्वीप में भारत और चीन तक पहुँचना सम्भव था परन्तु पश्चिम की दिशा से अटलांटिक महासागर पारकर एशिया महाद्वीप तक पहुँचना वह सम्भव नहीं समझता था।

यह मनुष्य का स्वभाव है कि जिन वस्तुओं का उसे यथार्थ ज्ञान नहीं होता, उनके सम्बन्ध में कुछ कल्पना कर लेता है। ऐसी ही कितनी मनगढंत बातों के कारण मनुष्य की उन्नति में बड़ी बाधा पड़ती आई है। मानचित्रों के सम्बन्ध की इस भ्रामक धारणा के कारण कितनी शताब्दियों तक के लिए भारत और चीन का जल-मार्ग अज्ञानता के अन्धकार में छिपा रहता परन्तु ठीक समय पर ही पुर्तगाल का प्रसिद्ध नाविक युवराज हेनरी इस भ्रामक धारणा को निर्मूल सिद्ध करने के लिए कार्य-क्षेत्र में अवतरित हुआ दिखाई पड़ा।

युवराज हेनरी पुर्तगाल के राजा जोन प्रथम का पुत्र था। इसका जन्म सन् १३९४ ई० में हुआ था। राजा जोन स्वयं नाविक विद्या में अपने देश को गौरवशाली बनाना चाहता था। उसके पुत्रों में पेड्रो और हेनरी दोनों का भौगोलिक अनुसंधान-क्षेत्र में बड़ा नाम है। भौगोलिक ज्ञान बढ़ाने में इन लोगों ने बड़ा प्रयत्न किया।

युवराज हेनरी का अनुमान था कि अफ्रिका के दक्षिण से हो कर कोई समुद्री मार्ग एशियाई देशों के लिए अवश्य ही होगा। इस सम्बन्ध की फीनीशियन लोगों की यात्रा की किम्वदन्ती भी

उसने सुनी थी। इस कारण लोगों की मनगढ़ंत धारणा दूरकर इस समुद्री मार्ग की खोज के लिए उसने विशेष रूप से तैयारी करना प्रारम्भ कर दिया।

जब किसी आदमी को कोई बड़ी वस्तु सोच निकालनी होती है, उसे कोई भाषण देना होता है, कोई ग्रन्थ लिखना होता है, किसी यात्रा की योजना करनी होती है वा कोई बड़ा व्यावसायिक कार्य प्रारम्भ करना होता है तो वह कुछ समय के लिए वाह्य संसार से अपने को पृथक कर एकान्त स्थल में विचार करता है। इसी भाँति हेनरी ने अपने महान कार्य को सिद्ध करने की युक्ति निकालने के लिए सन् १४१५ में अपने को वाह्य संसार से पृथक कर लिया। इसने अपने को ज्ञात संसार से अधिक से अधिक इसलिए विविक्त कर लिया कि अज्ञात संसार को ज्ञात कर सके। इस प्रकार उसने एकान्त स्थान में विंसेंट अंतरीप के सिरे पर अटलांटिक महासागर के किनारे अपनी कुटी बनाई।

यहाँ पर उसने अधिक से अधिक भौगोलिक ज्ञान उपार्जन किया जितना कि संसार को उस समय तक ज्ञात हो सका था। नाविक विद्या के सम्बन्ध की जितनी विद्याएँ हो सकती थीं, उन सब का उसने स्वयं अध्ययन कर अपनी कुटी को उन विद्याओं का केन्द्र बना लिया। गणित, नौकागमन, मानचित्रांकन, ज्योतिष, पोतनिर्माण आदि सभी विद्याएँ वहाँ पर सिखाई जाने लगीं जिनकी एक नाविक को जानने की आवश्यकता थी। कुशल से कुशल नाविक, पोतवाह, गणितज्ञ, ज्योतिषी और यंत्रकार चारों ओर से

भिन्न-भिन्न देशों से आकर युवराज हेनरी की योजना पूरी करने के लिए जुटने लगे। इसके फलस्वरूप शिक्षित मल्लाहों, पटु पोत-वाहों का अभाव न रह गया; पोत-संचालन के यंत्र अधिक सुन्दर रूप पा सके; मानचित्रों में बहुत कुछ सुधार हुआ और जहाजों का निर्माण अधिक कुशलता से होने लगा।

उस समय तक योरप में दिकसूचक यंत्र का आगमन हो चुका था। पूर्वकाल से चीन देश में नाविक इस यंत्र का उपयोग करते आये थे। वहाँ से इटली के प्रसिद्ध यात्री मार्कोपोलो वा अरब के किसी यात्री ने इसे योरप में पहुँचाया था। इस यंत्र के प्रचार से समुद्र-यात्रियों को बहुत अधिक सुविधा प्राप्त हो गई और उनकी एक बहुत बड़ी कठिनाई दूर हो गई।

हेनरी के विशेष प्रयत्न के कारण जब नाविकों को बहुत अधिक प्रोत्साहन मिलने लगा और दिक्सूचक यंत्र के साथ अच्छे जहाज और समुद्र-यात्रा के उपयुक्त अन्य बातें भी उन्हें उपलब्ध होने लगीं तो जहाज समुद्र के किनारे से दूर दूर दौड़ लगाने लगे। अधिक समुद्र-यात्रा के कारण मानचित्र भी अधिक शुद्ध बनने लगे। मानचित्रों में जो स्थान मनगढ़ंत थे, उनके स्थान पर वास्तविक स्थानों का नाम दिखाई पड़ने लगा। युवराज हेनरी अपनी उस एकान्त कुटी में नाविकों को भिन्न भिन्न बातें सिखाता और नए सिद्धांत निकलवाकर उनका परीक्षण करवाता।

उन दिनों योरप में लोगों की भ्रान्त धारणा थी कि पृथ्वी के मध्य भाग उष्ण कटिबंध में इतनी अधिक गर्मी पड़ती है

कि वहाँ मनुष्य जीवित ही नहीं रह सकता क्योंकि उस भाग में सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं। केवल इस भाग के उत्तर और दक्षिण के शीतोष्ण कटिबंध के भूभागों में ही मनुष्य रह सकता है, परन्तु मध्य के विकट उष्ण भाग के कारण ये शीतोष्ण कटिबन्धवाले दोनों भाग एक दूसरे से सदा से सर्वथा असम्बद्ध हैं। इस कारण अफ्रिका के समुद्र-तट पर अधिक दक्षिण तक जाने का नाविकों को साहस नहीं होता था। गर्मी के साथ लोगों की यह भी कल्पना थी कि उस ओर बड़े-बड़े अजीब जन्तु रहते थे, साँपों की भरमार थी और नाना प्रकार की विपत्तियाँ थीं। युवराज हेनरी ऐसी मूर्खता-पूर्ण धारणाओं को निर्मूल सिद्ध करने पर तुला हुआ था और इस बात की आशा में था कि उसे अफ्रिका के दक्षिणी छोर का पता लग जाने पर उसे पूर्व के धनागार के लिए एक ऐसा समुद्री मार्ग मिल सकेगा जिसपर उसका पूर्ण अधिकार होगा। सब प्रकार के करों से उन देशों की वस्तुएँ मुक्त होंगी और जहाज पुर्तगाल से सीधे उन देशों तक पहुँचा करेंगे। सम्भवतः प्रीस्टर जोन के राज्य का भी पता लग जायगा। प्रीस्टर जोन एक काल्पनिक राजा था जिसके संबंध में ईसाई लोगों का विश्वास था कि मुसलमानी राज्यों के पार उसके राज्य का कहीं अस्तित्व होगा।

इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर युवराज हेनरी ने पहले पहल १४१२ ई० में अफ्रिका के समुद्र-तट का अन्वेषण करने के लिए एक जहाज भेजा परन्तु यह प्रयास असफल रहा। इसके तीन वर्ष

पश्चात् यह मूरों के क्यूटा नामक दुर्ग का शासक हुआ। यह भूमध्य सागर के पश्चिमी जलद्वार जिब्राल्टर के मुहाने के दक्षिण भाग में अफ्रिका के किनारे पर था। जब मूर पुर्तगाल से भगाए जा सके तो अफ्रिका में भी उनका पीछा किया गया और क्यूटा के इस अजेय दुर्ग पर विजय प्राप्तकर युवराज हेनरी ने बड़ा नाम कमाया। इस दुर्ग का शासक हो जाने पर उसने मूरों से विशेष लाभ उठाया। इनके द्वारा उसने अफ्रिका के सहारा के दक्षिणी देशों के सम्बन्ध की बातें ज्ञात की जहाँ से ऊँटों के कारवाँ पर लदलद कर तरह तरह की बहुमूल्य वस्तुएँ आया करती थीं।

इसके पश्चात् हेनरी ने प्रत्येक वर्ष एक जहाज को अफ्रिका के किनारे किनारे दक्षिण की ओर यह आज्ञा देकर भेजना प्रारंभ किया कि वे जितनी दूर दक्षिण तक जाना सम्भव हो, जायँ और लौटकर यात्रा का हाल बतावें। इन यात्राओं में से एक जहाज दक्षिण की ओर बोजेडोर अंतरीप तक पहुँच सका, परन्तु समुद्र की विकराल लहरों और भीषण तट को देखकर उन लोगों का साहस आगे बढ़ने का नहीं हुआ और वे उस स्थान से लौट आये। इससे दक्षिण बढ़ने पर लोगों को बड़े ही संकट में पड़ने का दृढ़ विश्वास था।

सन् १४१८ ई० में हेनरी के दो आदमिओं ने इस भीषण अंतरीप को पार कर दक्षिण की ओर बढ़ने का साहस किया जिससे वे उस ओर के तट का पता लगा सकें। परन्तु इस यात्रा में दुर्घटना का सामना करना पड़ा। एक तूफान में उनका

जहाज समुद्र में दूर दाहिनी ओर बह गया। इन लोगों को तट तक पहुँचने की आशा जाती रही परन्तु ज्यों ही तूफान शान्त हुआ त्यों ही सामने ही एक बहुत ही सुरम्य द्वीप दिखाई पड़ा जिसे उन्हों ने कभी नहीं देखा था। वे लोग उस द्वीप में उतरे और उसका नाम पोर्टो सैंटो रक्खा। इस द्वीप का ज्ञान होने पर यहाँ उपनिवेश बसाया गया। इसी द्वीप में रहते हुए लोगों ने कुछ दूरी पर एक दूसरा द्वीप होने का अनुमान किया। एक दिन अनुकूल वायु देखकर इस द्वीप तक यात्रा की गई और उसे पहले द्वीप से भी बड़ा और मनुष्य-रहित देखकर उपनिवेश बसाया गया। इस द्वीप का नाम मदीरा रक्खा गया।

बोजेडोर अंतरीप के दक्षिण पहुँचने के प्रथम प्रयत्न में पोर्टो सैंटो और मदीरा द्वीपों के ज्ञात होने के पश्चात् यद्यपि हेनरी नाविकों को अधिक दक्षिण के अफ्रिका के तट का अन्वेषण कराने के प्रयत्न में लगा रहा परन्तु अधिक दिनों तक इस ओर सफलता न मिल सकी। दक्षिण की ओर के समुद्र में लोगों की काल्पनिक आपदाओं और मनगढ़ंत संकटों का भय दूर कराते बहुत समय लगा। अंत में सन् १४३३ ई० में गिल इनीज़ नाम के नाविक को बोजेडोर अंतरीप को पारकर अधिक दक्षिण तक जहाज ले जाने में सफलता प्राप्त की। जब गिल इनीज़ की यात्रा से लोगों ने देख लिया कि बोजेडोर के अंतरीप के दक्षिण भी समुद्र की यात्रा ऐसी ही सुगम है जैसी कि उत्तर के समुद्र में और अग्नि की भीषण लपटें, सर्प वा अन्य विपत्तियाँ भी नहीं

हैं तो लोगों के विस्मय का ठिकाना न रहा।

बोजेडोर अंतरीप पारकर लेने के पश्चात् हेनरी को अधिक दक्षिण की ओर नाविकों को भेजने में कोई कठिनाई न होने लगी। फलतः १४३५ तक बोजेडोर अंतरीप के ५०० मील दक्षिण तक जहाज पहुँच सके। तट पर कारवाँ के चिह्न मिलने लगे। सन १४४१ ई० में जहाज ब्लैंको अंतरीप तक पहुँच सका। इस समय तक ज्ञात संसार की दक्षिण सीमा पार कर ली गई थी और नाविक अज्ञात क्षेत्र में अन्वेषण प्रारम्भ कर रहे थे। इसी समय एक नई बात उत्पन्न हुई। यह अफ्रिका के मूलनिवासी हब्शी लोगों को दास बनाकर बेचने का व्यवसाय था। जब पहले पहल युवराज हेनरी के पास हब्शी पकड़कर लाए गए तो उसने मनुष्यता के नाते उन्हें अपने देश को लौटा दिया। उसके बदले हब्शी लोगों ने युवराज के पास सोना भेजा परन्तु दुर्भाग्यवश युवराज के नाविकों ने हब्शी लोगों को पकड़ना अपना व्यवसाय ही बना लिया और उन्हें बन्दी कर सोना पाने की ऐसी चाट लगी कि वे उस मूल लक्ष्य ही को भूल गए जिसके लिए युवराज ने उन्हें भेजा था। इस अमानुषिक व्यापार के फलस्वरूप अफ्रिका-निवासियों पर अधिकाधिक आक्रमण होने लगे और अफ्रिका-निवासियों ने पुर्तगाल वालों से घृणा करना और भय खाना सीख लिया।

किसी प्रकार १४४५ ई०में वर्डी अंतरीप पार की जा सकी। बीच में युवराज के नाविकों ने सेनेगल नदी के मार्ग से भूखंड

में प्रवेशकर वहाँ के निवासियों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया परन्तु हब्शी लोगों ने इतना प्रबल विरोध किया कि उन्हें निराश हो लौटना पड़ा। सन् १४४५ और ४६ के बीच हेनरी के एक वेनिस-निवासी नौकर ने गैम्बिया नदी में प्रवेश कर वहाँ के निवासियों से व्यापारिक सम्बंध स्थापित किया। यहाँ से सीरिया, ट्यूनिस और मोरक्को तक व्यापारियों के कारवाँ जाते थे।

इन सब अन्वेषणों के अतिरिक्त युवराज हेनरी के जीवन में अन्तिम रूप में सन् १४५८ ई० में डीगो गोमेज़ नाम के एक व्यक्ति ने बहुत अधिक दक्षिण जाने का प्रयत्न किया। वह सियर्रा लियोन नामक प्रसिद्ध पर्वत के समीप तक पहुँच सका और उसको इस बात का पूर्ण विश्वास दिलाया गया कि उसके बाद ही सोने की खानें हैं।

इन अन्वेषणों से लाभ उठाकर युवराज हेनरी ने एक बड़ा मान-चित्र बनवाया जिसमें सभी ज्ञात स्थानों की ठीक-ठीक स्थिति बनाई गई। उसका यही सर्वप्रथम विश्वासनीय मानचित्र था जिसमें एक भी काल्पनिक वा मनगढ़ंत स्थान नहीं बना था। हेनरी के जीते जी उसके अनुमान की सत्यता न प्रकट हो सकी और एशियाई देशों तक के समुद्री मार्ग का भी पता न लग सका। अभी वे दिन दूर थे और उनका श्रेय दूसरों को मिलना था परन्तु इसने उसके लिए पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत कर दी थी और सभी काल्पनिक संकटों और मनगढ़ंत बातों को असत्य सिद्ध कर

महासागर में जहाजों को दौड़ाने का मार्ग सुझा दिया था। प्रारम्भिक प्रयत्न में इतनी सफलता कम प्रशंसा की बात न थी।

८—भारत का समुद्री मार्ग



र्तगाल का प्रसिद्ध नाविक—युवराज हेनरी जब तक जीवित रहा उस समय तक अफ्रिका के तट का अधिक-से-अधिक उत्साह से अन्वेषण होता रहा और भारत के समुद्री पथ की खोज में नाविक संलग्न रहे परन्तु जब १४६३ ई० में उसकी मृत्यु हो गई तो उसका निर्धारित कार्यक्रम आगे न बढ़ सका। उस समय अलफोंजो नामक सम्राट पुर्तगाल की गद्दी पर था। उसने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। इस कारण लगभग बीस वर्ष तक अन्वेषण-कार्य बहुत ढीला रहा। कुछ उत्साही नाविक ही थोड़ी बहुत खोज करते रहे परन्तु जब सन् १४८४ में अलफोंजो की मृत्यु पर जेम्स द्वितीय नाम का नया सम्राट हुआ तो उसने इस ओर विशेष उत्साह दिखलाया और युवराज हेनरी के उद्देश्यों की पूर्ति में दत्त-चित्त हुआ।

जेम्स द्वितीय के प्रयत्न-स्वरूप सन् १४८६ ई० बारथेलोम्यू डियाज़ नाम का नाविक एक जहाज के बेड़े के साथ अफ्रिका के दक्षिणी छोर का पता लगाने के लिए भेजा गया जिसे उत्तमाशा

अंतरीप के अन्वेषण का श्रेय है। सम्राट ने डियाज़ को आज्ञा दी थी कि अफ्रिका के दक्षिणी छोर तक पहुँचने के लिए वह, जितना भी प्रयत्न हो सकता हो, करे और सम्भव हो तो प्रीस्टर जोन के राज्य का पता भी लगावे। डियाज ने धैर्य धारण कर सम्राट की इस आज्ञा का पालन करने के लिए अटलांटिक महासागर में अपने जहाजों को परमात्मा के भरोसे पर छोड़ दिया।

अफ्रिका के किनारे २ आरेंज नदी के मुहाने तक तो जहाज भली भाँति पहुँच गए परन्तु वहाँ पर प्रचण्ड धारा और आँधी के कारण उनका सँभालना बड़ा कठिन हो गया और तट से दूर बह गए। पन्द्रह दिन तक निरन्तर तूफान का प्रकोप रहने से जहाज बड़ी संकटपूर्ण स्थिति में रहे, कहीं भूमि का नाम भी नहीं था, तूफान ने खाद्य-पदार्थों को नष्ट कर दिया। इस प्रकार जीवन-मरण का प्रश्न सम्मुख होने पर नाविकों पर क्या बीत रही होगी इसका अनुमान करना भी बड़ा कठिन है। इस प्रकार की विपत्ति के साथ शीत इतनी अधिक हो गई कि जहाज में काम करने के लिए मल्लाहों के हाथ असमर्थ हो चले।

डियाज़ ने बड़े धैर्य से इन कठिनाइयों का सामना किया और जहाजों को पूर्व की ओर घुमाकर फिर उत्तर दिशा में घुमाया। धैर्यपूर्वक जहाजों को बढ़ाने से अकस्मात् भूमि का दर्शन हुआ। फिर तो नाविकों के हर्ष का ठिकाना न रहा। भूमि-तट पूर्व-पश्चिम फैला था सामने ही खाड़ी थी जिसके तट पर पशु चर रहे थे। आगे बढ़कर डियाज़ ने समुद्र-तट को उत्तर की ओर मुड़ता देखा

तो उसके हृदय में आनन्द की सीमा न रही। अब वह भारत के पथ पर था। मार्ग की पिछली कठिनाइयों से मल्लाह पुर्तगाल लौटने के लिए बेतरह अधीर हो रहे थे। आगे बढ़ना उन्होंने सर्वथा अस्वीकार कर दिया। इस लिएविवश होकर डियाज़ को लौटना पड़ा। अपने लक्ष्य को पूरा कर लौटने में खेद करने के लिए स्थान भी नहीं था।

लौटते समय डियाज़ ने अफ्रिका के धुर दक्षिण की प्रसिद्ध अंतरीप को देखा जो संसार के लिए उस समय तक अंधकार में थी। डियाज़ उस पर प्रकाश डाल संसार के सम्मुख रख कर योरोपीय देशों में भविष्य की बहुत सी विकट समुद्री-यात्राओं के लिए उत्कंठा उत्पन्न कराने का मंत्र फूँक रहा था। इस अंतरीप के समीप तूफान अधिक वेग से उठ रहा था इस कारण उसने इस का नाम तूफ़ानी अंतरीप रक्खा परन्तु इस समय पुर्तगाल-नरेश को सुनाने के लिए उसके पास मधुर संदेश था इस कारण इस कठिनाई के साथ ही यात्रा के सारे दुःखों की सुध जाती रही। घर लौटते समय उसके हृदय में आनन्द की लहरें उमड़ रही थीं।

पुर्तगाल लौटने पर राजा ने बड़े आनन्द से इनका स्वागत किया और कौतूहलपूर्वक यात्रा की सफलता को देखा। जब उसने अफ्रिका के दक्षिणी छोर का पता पाने का संदेश सुना तो अपनी आँखों बहुत दिनों से पूर्वी देशों के अतुल धन-भंडार के पाने के स्वप्न को सत्य सिद्ध होते देखा। उसके जहाज सीधे उन देशों में पहुँचेंगे, बहुमूल्य पदार्थों से लदे हुए वे बेरोक-टोक पुर्त-

गाल लौट सकेंगे, मार्ग पर पुर्तगाल का अधिकार होगा, हृदय में इस प्रकार के भाव उठने लगे। इन भावों से प्रेरित हो कर ही उसने अफ्रिका के धुर दक्षिण की अंतरीप का नाम 'उत्तमाशा अंतरीप' रखा। हेनरी का सिद्धान्त इस अंतरीप ने सिद्ध कर दिया।

जब उत्तमाशा अंतरीप का ज्ञान हो सका तो यह आशा की जा सकती है कि भारत तक समुद्री मार्ग से पहुँचने के लिए तुरन्त ही यात्रा प्रारम्भ करने की तैयारी होती परन्तु यह मार्ग सहस्रों मील का बहुत अधिक लम्बा और संकटपूर्ण था। डियाज़ के नाविकों ने मार्ग की कठिनाइयों का बड़ा कड़ुवा अनुभव किया था इस कारण भारत तक की यात्रा के लिए बहुत ही अधिक विशेष रूप से तैयारी करने की आवश्यकता थी। इसी बीच एक दूसरी घटना घटित हुई जिसने अन्वेषण-जगत में खलबली मचा दी। यह कोलम्बस की नई दुनिया की खोज थी।

कोलम्बस ने सन् १४९२ ई० में पश्चिम की ओर समुद्र-यात्रा कर एक नए महादेश का पता लगाया जिसे वह भ्रमवश एशिया के पूर्वी देश का भारत समझता था, इससे पुर्तगालवाले बहुत ही स्तब्ध हुए और शीघ्र ही उन्होंने उत्तमाशा अंतरीप होकर भारत तक के समुद्री मार्ग का पता लगाने के लिए जहाजों का बेड़ा भेजने का उद्योग किया। इस प्रकार सन् १४९७ ई० में वास्को डि गामा इस जल मार्ग की खोज में पुर्तगाल से रवाना हो सका।

इस यात्रा के लिए वास्को डि गामा को राज्य की ओर से ६० मल्लाहों के साथ तीन जहाज दिए गए और अन्य आवश्यक

सामग्री की व्यवस्था की गई परन्तु इतने बड़े मार्ग को कितनी कठिनाइयों का सामना कर पार करने के लिए यह तैयारी बहुत थोड़ी थी। फिर भी डि गामा ने परमेश्वर के नाम पर एक अपरिचित देश के लिए अज्ञात मार्ग से पहुँचने के लिए प्रस्थान करने का साहस किया। समय समय की वायु की प्रगति का ज्ञान न होने के कारण इस यात्रा के प्रारम्भ में ही प्रतिकूल वायु का सामना करना पड़ा। इस प्रकार वायु के वेग के विपक्ष पड़ने के कारण जहाजों को बड़ी विपत्ति में पड़ना पड़ा। मल्लाहों का हृदय दहल उठा। निरन्तर चार मास तक यही दशा रही। मल्लाहों ने किसी प्रकार विपत्तियों का सामना किया। निदान उत्तमाशा अंतरीप के दर्शन हुए।

इसी समय समुद्र की पिशाच की तरह डरावनी, ऊँची लहरों को देखकर मल्लाहों का साहस छूट गया। जान पड़ता था लहरें दैत्य की भाँति जहाजों को निगल जाने के लिए आगे बढ़ रही हैं। समुद्र-देवता प्राचीन काल से जलखंड से रक्षित देश की ओर यात्रियों के बढ़ते आने के कारण विकट रोष प्रकट करते दिखाई पड़ते थे। वास्को डि गामा ने उस अपार धन और यश-लाभ का विश्वास दिला कर नाविकों को धैर्य बँधाया जो इस यात्रा की कठिनाई पर विजय प्राप्त करने पर ही सम्भव था। इसके पश्चात् समुद्र का प्रकोप भी कुछ शान्त हुआ। मल्लाहों ने प्रयत्न किया और अन्तरीप पार की जा सकी।

अफ्रिका के पूर्वी तट पर मोज़म्बिक पोतस्थल पर इनका

अरब यात्रियों से समागम हुआ जो वहाँ से भारत की समुद्र-यात्रा करते थे। यहाँ से आगे बढ़ने पर मोम्बासा मिला। यहाँ पर इन्हें वहाँ के निवासियों के आक्रमण का सामना करना पड़ा। मोम्बासा से आगे बढ़कर मलिन्दी नामक बन्दरगाह पर वहाँ के राजा से इनकी भेंट हुई। वहाँ से भारत तक बराबर जहाज आते जाते रहते थे। राजा ने अपना एक नाविक इन लोगों के साथ कर दिया। वहाँ से बीस दिन तक हिन्द महासागर की यात्रा करने के पश्चात् पुर्तगाल के यात्रियों ने साक्षात् उस देश को देखा जिसका उसके देशवाले स्वप्न देखा करते थे। वे सचमुच भारत में पहुँच गए और जिस दिन के लिए योरपवालों ने उतनी व्यग्रता दिखलाई थी वह आ पहुँचा।

इस प्रकार सन् १४९८ ई० में भारत समुद्र-तट पर कालीकट पोतस्थल पर पहले पहल योरोपीय जहाज का लंगर पड़ा। वास्को-डि गामा स्थल पर उतरकर अपने कुछ साथियों के साथ वहाँ के राजा जमोरिन से मिला। पहले तो राजा ने इनका सत्कार किया परन्तु पीछे कुछ लोगों ने उसे इन लोगों के विरुद्ध भड़काया। उन दिनों भारत में मुसलमान लोगों का प्रभुत्व था। उन्होंने पुर्तगाल निवासियों को व्यापार-क्षेत्र में प्रतिद्वन्दी रूप में पैर जमाते हुए देखा। इस कारण उनसे भय मानकर राजा को उनके विरुद्ध कर दिया परन्तु वास्को डि गामा ने राजा से मिलकर उसे फिर प्रसन्न कर लिया और कुछ व्यापारिक वस्तुओं की लेन-देन कर शीघ्र ही यहाँ से लौट गया। मार्ग में

कोई विशेष बात न हुई और उनके जहाज पुर्तगाल पहुँच गए। योरप में इस समाचार के फैलने पर लोगों में बड़ी उत्तेजना फैल गई। इस यात्रा से योरप से एशिया तक का समुद्री मार्ग खुल जाने का ज्ञान जब वेनिस वालों को हुआ तो वे छाती पीट कर रह गए। इस नई खोज से उन पर वज्रपात हुआ। इसी दिन से उनके गौरव पद को पुर्तगाल ने छीन लिया और वेनिस श्री-हत हो गया।

९-नई दुनिया में कोलम्बस



जिन महासागरों में आज समय के प्रभाव से भीमकाय जलयान रात-दिन निर्विघ्न दौड़ लगाते हैं और जिनके द्वारा दूर दूर के स्थानों की यात्रा स्थल-मार्ग की अपेक्षा अधिक शीघ्र सम्भव है, वे ही एक दिन दुर्गम थे। प्रारम्भ में इन महासागरों की यात्रा करना सचमुच बड़े साहस का काम था। यही कारण था कि चौदहवीं शताब्दी तक खुले महासागरों में जलयानों के चलने की विशेष चर्चा नहीं सुनी जाती। चौदहवीं शताब्दी में योरोपीय देशों में पुर्तगाल और स्पेन के जलयानों ने महासागरों की लंबी लंबी यात्राएँ कर योरप को चकित कर दिया। यद्यपि पुर्तगाल ने इस विषय में पहिले उत्साह दिखलाया तथापि उसके पोत अधिक-

तर स्थल के किनारे किनारे ही दूर तक दौड़ लगाते थे। स्थल को दृष्टि से ओझल कर बिल्कुल खुले महासागर की लंबी यात्रा का श्रीगणेश करने का गौरव स्पेन देश को प्राप्त है। परन्तु स्पेन को यह गौरव दिलानेवाला एक विदेशी व्यक्ति है जिसका नाम कोलम्बस है। इसी की यात्रा नई दुनिया को ढूँढ़कर संसार का कायापलट कर देनेवाली है।

कोलम्बस इटली के जिनोआ नगर का रहनेवाला था। इसका लालन-पालन समुद्र में हुआ था। बालकपन में इसने मल्लाही विद्या के सम्बन्ध की बातों का अच्छी तरह अध्ययन किया। १४ वर्ष की अवस्था में इसने जहाज पर नौकरी कर ली। उन दिनों जिनोआ के व्यापारियों को मूर और तुर्क लोगों के आक्रमण से सदैव सशंक रहना पड़ता था। उनके जहाजों को शत्रुओं का प्रतिक्षण डर बना रहता था। और अपनी रक्षा के लिये वे बराबर सजग रहते थे। ऐसी स्थितियों में सदा रहने के कारण कोलम्बस एक निर्भीक नाविक बन गया। उसने दूसरे मल्लाहों के सम्पर्क में रह कर बहुत सी बातें ज्ञात कर बड़ा अनुभव प्राप्त कर लिया। भारत की उपज और व्यापार का उसने पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया और योरप के नगरों पर भारत के व्यापार के प्रभाव को भी भलीभाँति समझा।

उसे अपने ज्ञान के बढ़ाने की उत्सुकता इतनी अधिक थी कि वयस्क होने के पूर्व ही उसने भूमध्यसागर के बहुत से पोतस्थलों की यात्रा कर जिब्राल्टर के मुहाने को पार किया और अटलांटिक

महासागर में पहुँचकर इटलीवालों के सामुद्रिक विश्राम-स्थलों को देखा। इङ्गलैंड होकर उसने आइसलैंड की भी यात्रा की। वहाँ से लौटने पर अकस्मात् एक पुर्तगाल के जहाज से मुठभेड़ हो जाने के कारण दोनों जहाजों में आग लग गई। वहाँ से इसने तट तक तैर कर अपने प्राण की रक्षा की।

पुर्तगाल के लिस्बन नगर में इसकी जन्मभूमि के कितने आदमी मिल गए। उन लोगों ने इसे पुर्तगाल में ही रहने का परामर्श दिया। इसने अपने गुणों के कारण शीघ्र ही अपनी धाक जमा ली। वहीं पर इसने एक महिला से विवाह कर लिया जिसका पिता बड़ा प्रसिद्ध नाविक रह चुका था। इस प्रकार सामुद्रिक ज्ञान बढ़ाने में उसको बड़ी सहायता मिली। वहाँ से उसने अफ्रिका के किनारे सभी ज्ञात स्थानों की यात्रा की।

उन दिनों पुर्तगाल में भारत के लिए समुद्री मार्ग ढूंढ़ निकालने की बड़ी धूम थी। इस कारण स्वभावतः इस ओर कोलम्बस का ध्यान आकर्षित हुआ। परन्तु कोलम्बस को एक नई बात सूझी। पुर्तगालवाले इस प्रयत्न में थे कि अफ्रिका का दक्षिणी किनारा ढंढ़कर उसका चक्कर काट भारत का समुद्री मार्ग खोजें, परन्तु कोलम्बस के मस्तिष्क में यह बात आई कि विद्वानों की सम्मति में पृथ्वी गोलाकार पिण्ड है अतएव योरप से पश्चिम चलकर भारत पहुँचना सम्भव होगा। अफ्रिका का चक्कर काट कर इतने लम्बे मार्ग का पता लगने पर भी व्यापार में बहुत अधिक लाभ की, आशा नहीं जान पड़ती थी, इस कारण पश्चिम होकर छोटा

मार्ग ढूंढ़ निकालने की उसे अधिक चिन्ता हुई।

मार्को पोलो के यात्रा-विवरण में उसने पढ़ा था कि एशिया पूर्व में बहुत दूर तक फैला हुआ है और कुछ ऐसी भी जनश्रुति थी कि योरप के पश्चिम में कहीं भूमि है, इस कारण समुद्र-मार्ग से पश्चिम की ओर यात्रा करने का उसने दृढ़ विचार कर लिया।

इस विचार को कार्यान्वित करने के लिए पर्याप्त धन अपेक्षित था, अतएव राजकीय सहायता पाने के लिए उसे प्रयत्न करना पड़ा। पहले उसने जिनोआ जाकर सहायता पाने के लिए प्रयत्न किया, परन्तु वहाँ से निराश होना पड़ा। फिर उसने पुर्तगाल के राजा की सामुद्रिक अनुसन्धान की प्रवृत्ति के भरोसे उससे सहायता माँगने का साहस किया, परन्तु पुर्तगाल की दृष्टि उत्तमाशा अन्तरीप खोज निकालने की ओर लगी थी, इसलिए सहायता नहीं मिल सकी।

स्पेन एक दूसरा देश था जहाँ से सहायता मिलने की आशा की जा सकती थी, परन्तु स्पेन मूरों से छुटकारा पाने के लिए उनके अन्तिम दुर्ग के अधिकृत करने में प्रवृत्त था, इस कारण दूसरी ओर ध्यान ले जाना कठिन था। उस समय तक स्पेन ने समुद्र-यात्रा में विशेष उत्साह भी नहीं दिखाया था इस कारण राज्य ने कोलम्बस को दो बार कोरा उत्तर दिया। इस तरह आठ वर्ष तक उसे चिन्ता में काटने पड़े। उसने अपने एक सम्बन्धी को इंग्लैंड के राजा के पास भी अपनी योजना के कागज़-पत्र देकर भेजा था; परन्तु वहाँ भी सफलता नहीं मिली। उसने फिर इंग्लैंड जाने का

विचार किया परन्तु स्पेन के राजा ने उसे मार्ग से ही बुला लिया। उस समय मूरों पर विजय प्राप्त की जा चुकी थी, इस कारण कोलम्बस की यात्रा के लिए राजा ने सहायता देना स्वीकार किया। यात्रा की बहुत सी बातें तै हुईं जिनके द्वारा कोलम्बस को नए खोजे जानेवाले देशों का प्रधान शासक माना गया और प्राप्त धन में से दशमांश पर उसका अधिकार दिया गया। राजकीय स्वीकृति मिल जाने पर भी जहाजों के बनने में बड़ा विलम्ब लगा।

कोलम्बस को स्पेन से सहायता मिलने पर बड़ी प्रसन्नता हुई परन्तु स्पेन के बहुत से लोगों की अज्ञानता और द्वेष के कारण उसके बहुत से शत्रु उत्पन्न हो गए जिनके कारण पीछे उसे बड़ा दुख उठाना पड़ा। यात्रा के लिए तीन जहाज़ बड़ी कठिनाई से बन सके। ऐसे अज्ञात समुद्र के लिए साहसी मल्लाहों का मिलना भी कठिन था। बड़े प्रयत्न के पश्चात् कुल १२० व्यक्ति जाने के लिए तैयार हुए। १२ मास के लिए भोजन सामग्री रख ली गई। इस तरह १४९२ ई० में कोलम्बस की यात्रा प्रारम्भ हुई।

यात्रा के प्रारम्भ में ही मल्लाहों ने कठिनाई उपस्थित की। जहाज़ भी ऐसी यात्रा के लिए उपयुक्त सिद्ध नहीं हुए। कोलम्बस ने यात्रा के समाप्त होने पर असीम धन के देश में पहुँच जाने की आशा दिलाकर सबको धैर्य बँधाने का प्रयत्न किया। महासागर में कुछ दूर पर केनेरी द्वीप-समूह का लोगों को ज्ञान था। वहाँ पहुँच कर जहाज़ों की मरम्मत की गई। कुछ समय वहाँ

ठहरने के पश्चात् जहाज़ पश्चिम की ओर एक अज्ञात महासागर में बढ़ने लगे।

कोलम्बस प्रत्येक छोटी छोटी बात को लिखता जाता था। उसको दिन-रात चैन नहीं रहता था। एक अज्ञात महासागर के दूसरे किनारे पर पहुँचने का उसने बीड़ा उठाया था। आगे का मार्ग कैसा होगा, कितने दिन की यात्रा होगी, मार्ग में कैसी कैसी विपत्तियों का सामना करना होगा, इनका उसे तनिक भी ज्ञान नहीं था, फिर भी साहस कर आगे बढ़ता ही चला जाता था। कोई प्रोत्साहन देनेवाला नहीं था, कोई परामर्श करनेवाला नहीं था, फिर भी उसे समुद्र पर विजय प्राप्त करने का पूरा भरोसा था। वह जहाज़ की छत पर रह कर बराबर मार्ग को देखा करता और आगे का मार्ग बताया करता। स्थल का कुछ संकेत पाने के लिए पक्षियों के आकाश में उड़ने का मार्ग देखता, समुद्री धारा के प्रवाह को देखता, मछलियों का रंग-रूप देखता और समुद्र तल पर तैरती हुई घासों को ध्यान से देखता परन्तु जहाज़ बराबर पश्चिम की ओर ही बढ़ाये जाता।

इस प्रकार वह उस अक्षांश पर पहुँच गया जहाँ हवा पूरब से पश्चिम बहा करती है, इस कारण जहाज बड़ी सुगमता से पश्चिम की ओर जाने लगे। कुछ दिनों तक इसी प्रकार मार्ग कटा। इस कारण कोई कठिनाई नहीं हुई। परन्तु एक स्थान पर समुद्र घने सेवार से भरा हुआ मिला। उसमें जहाज अँटक गए। यह समुद्र का विचित्र भाग था जो सारगैसो समुद्र के

नाम से प्रसिद्ध है। आजकल के मल्लाहों के लिए तो सारगैसो समुद्र साधारण वस्तु है परन्तु पहले पहल इस देखनेवालों ने यही समझा कि यदि जहाज घर की ओर नहीं लौटे तो यहीं पर स्थिर रहना पड़ेगा, भोजन-सामग्री सब समाप्त हो जायगी और जहाज समुद्र-तल पर सड़ा करेगा, साथ ही उनके प्राण पखेरू भी उड़ जायँगे। इसी प्रकार की भाँति भाँति की विपत्तियों की कल्पना होने लगी। इस निराशा-निशीथ में एक वायु के झोंके ने जहाजों को आगे बढ़ा कर आशा का संचार किया। साथ ही बहुत से पत्ती भी दिखाई पड़ने लगे, जिससे सिद्ध हो गया कि भूमि कहीं निकट ही है।

जब कई दिनों तक चलने के बाद भी कहीं भूमि नहीं दिखाई पड़ी तो नैराश्य नें फिर घेरा डाला, मल्लाहों का साहस टूट गया। मल्लाहों के असन्तोष के कारण कोलम्बस भी कुछ व्यग्र हो उठा। जहाज़ पर के लोग इतने व्याकुल थे कि कोलम्बस को मार कर समुद्र में फेंकने के लिए तैयार हो गए, जो उन सबको किसी अज्ञात स्थान में लिवाए जा रहा था और ऐसी भूमि को खोज रहा था जो इनके आगे बढ़ने के साथ साथ आगे भगी जा रही थी, जिस की खोज में उन्हें अधिक आगे बढ़कर घर की ओर लौट सकना सर्वथा असम्भव होगा और सब का वहीं अन्त हो जायगा। उन्होंने परामर्श किया कि कोलम्बस को समुद्र में फेंक दिया जाय, जहाज़ घर की ओर लौट चलें और कोलम्बस के मरने की कहानी गढ़ ली जाय। कोई दूसरा इन बातों का पता भी न लगा सकेगा।

बहुत कुछ संभव है कि कोलम्बस के भाग्य का इस प्रकार निपटारा होता और दो चार शताब्दियों तक नई दुनिया अंधकार के आवरण में छिपी रहती। परन्तु भूमि के समीप होने के बहुत से लक्षण शीघ्र ही दिखाई पड़े जिससे ऐसी दुर्घटना न हो सकी और लोगों को कुछ आशा बँधी। कई स्थानों पर समुद्र के पेंदे से जहाज़ के सांकेतिक यंत्र छू गए। पक्षियों की संख्या अधिक होने लगी, समुद्र-तट पर ईख का ताज़ा कटा टुकड़ा और गढ़ा हुआ लकड़ी का टुकड़ा तैरता मिला, सूर्यास्त के समय आकाश में बादल दूसरे ढंग के दिखाई पड़े, वायु अधिक गर्म और धीमी थी, रात को उसकी प्रगति बदल गई। इन सब लक्षणों से कोलम्बस को पूर्ण विश्वास हो गया कि भूमि निकट है। रात को उसने मल्लाहों को सजग रहने के लिए कह दिया जिससे कहीं जहाज़ भूमि से टकरा न जायँ।

कोलम्बस अपनी यात्रा का अन्त देख रहा था। इतनी विपत्तियों के पश्चात् भूमि के दर्शन होने वाले थे। रात के घोर अंधेरे में अपनी चिराभिलषित वस्तु के देखने के लिए दृष्टि दौड़ा रहा था। यह नया भूखंड उसके स्वप्न का भारतवर्ष होगा वा मार्को पोलो वर्णित स्वर्ण देश जापान होगा अथवा यह एक नई दुनिया ही होगी, इसका उसे कुछ भी ज्ञान नहीं था। परन्तु अपनी उत्सुकता के कारण जहाज़ की छत पर चढ़कर उसने उस अज्ञात अनिश्चित भूखंड की ओर दृष्टि डाली। अकस्मात् वह रुक गया। उसकी तीव्र दृष्टि ने अंधकार को पार कर एक मन्द

ज्योति को देख लिया था जो तुरन्त ही आँखों से ओझल हो गई। उसने फिर दृष्टि डाली तो फिर ज्योति दिखाई पड़ी और आँख से ओझल होगई। इसी प्रकार वह बार बार दिखाई पड़ती और आँख से ओझल हो जाती मानो कोई हाथ में मशाल लिये हो, जो बीच में किसी वस्तु के पड़ने से लुप्त हो जाता हो। अपनी आँखों पर विश्वास न करके उसने अपने दो साथियों को बुलाया। उन्होंने भी प्रकाश को देखा। इसके कुछ देर बाद ही एक दूसरे जहाज़ पर के आदमियों द्वारा भूमि का पता मिलने के कारण 'भूमि' शब्द की पुकार सुनाई पड़ी। इस कारण सबको बड़ी प्रसन्नता हुई और सबने प्रातः काल होने की उत्सुकता-पूर्वक प्रतीक्षा की।

प्रातःकाल सूर्य भगवान के उदय होते ही रहा सहा सन्देह भी जाता रहा। एक द्वीप उनके सामने था जिसमें हरे-भरे खेत और वृक्षों से आच्छादित पर्वत दिखाई पड़ते थे। इन दृश्यों ने यात्रियों के मार्ग के सब कष्टों को भुला दिया। कोलम्बस पर सबकी श्रद्धा बढ़ी, अपने व्यवहार के लिए सबने क्षमा-याचना की। जहाज़ से नावें उतारी गईं, अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित सभी मल्लाह और कर्मचारी किनारे की ओर चले। भालों के ऊपर झंडे फहराने लगे और रण-वाद्य बजने लगे। समुद्र-तट पर वहाँ के निवासी इकट्ठे हो गए। किनारे पर पहुँचने पर बहुमूल्य वस्त्रों से सुशोभित कोलम्बस पहले भूमि पर उतरा। उसके साथ सबने पृथ्वी को चूमा और परमेश्वर को सकुशल यात्रा समाप्त कराने

के लिए धन्यवाद दिया। द्वीप पर अधिकार कर लिया गया। वहाँ वालों से पता पाकर दूसरे बड़े द्वीपों का पता लगा। कोलम्बस ने समझा कि वह भारत के समीप पहुँच गया है जिसकी खोज में सारा योरप था।

वहाँ अपने कुछ आदमियों को छोड़ इस शुभ सन्देश को सुनाने के लिए उसने स्पेन के लिए प्रस्थान किया। स्पेन पहुँचने पर इस सन्देश के कारण लोगों के विस्मय और हर्ष की सीमा न रही। कोलम्बस ने अटलांटिक महासागर का रहस्य खोल दिया था, संसार के सामने एक नई दुनिया को ढूँढ़ निकाला था।

कोलम्बस के यात्रियों ने अपनी लम्बी और चौड़ी बातों से लोगों के हृदय पर बहुत ही अधिक प्रभाव डाला। उनकी बातों को काटनेवाला कोई नहीं था, इस कारण वे जितनी बढ़ चढ़कर मनगढ़ंत बातें की जा सकती थीं, करते। उन्होंने चित्ताकर्षक जल-वायु की बड़ी प्रशंसा की और ऐसे विलक्षण पौधों की चर्चा की जिन की सुन्दर डालें फैलकर शीत वायु प्रदान करती थीं और जो योरप में कहीं भी नहीं पाई जातीं, ऐसे विचित्र पंखों वाले पक्षियों का नाम लिया जो सुगन्धियुक्त वृक्षों की डालों पर विचरण करते। उन्होंने सोने और बहुमूल्य पत्थरों का यहाँ तक बाहुल्य बतलाया कि प्रत्येक सोते में पर्वतों पर से ये लुढ़कते आते। इसी तरह की कहानियाँ थीं जिन्होंने योरप के लोगों के धनाकांक्षी हृदयों में प्रचंड अग्नि प्रज्वलित कर दिया। इन बातों का योरप पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इस स्वर्णभूमि की यात्रा करने

के लिए हर एक कोने में साहसी यात्री तैयारी करने लगे, यात्रा के लिए उत्कण्ठित लोगों की संख्या बढ़ने लगी। योरप के सभी देशों से मनुष्य स्पेन में भरने लगे। सभी देशों के यात्री इस नई दुनिया में अपने भाग्य की परीक्षा करने और स्वर्ण-भंडार में भाग लेने के लिए पहुँचने लगे।

जिस यात्रा के लिए बड़ी कठिनाई से तीन छोटे से छोटे जहाजों के लिए कोलम्बस को राजा की आज्ञा मिल सकी थी, उसी यात्रा के लिए दूसरी बार १७ जहाजों का बेड़ा डेढ़ हजार आदमियों को कोलम्बस के साथ ले जाने के लिए तैयार हुआ। यह दूसरी यात्रा १४९३ ई० में प्रारम्भ हुई। इस बार उसने पहले के मार्ग से कुछ दक्षिण जहाजों को चलाया। इस कारण शीघ्र ही पूर्व से पश्चिम चलने वाली हवा का अक्षांश आ गया और सारगैसो समुद्र का सामना नहीं करना पड़ा। कोलम्बस ने पश्चिम भारत के द्वीपों को उपनिवेश बनाने के लिए अपने कुछ आदमियों को छोड़ दिया था। उनको सफलता-पूर्वक उपनिवेश स्थापित करते देखने के लिए वह मार्ग को शीघ्र तै कर रहा था परन्तु वहाँ पहुँचने पर उपनिवेश उजड़ा मिला। उसके साथियों ने अपनी कठोरता और धन-लिप्सा के कारण नृशंस व्यवहार का फल भोग लिया था। वहाँ के निवासियों के आत्मरक्षा के प्रयत्न में वे समूल नष्ट कर दिए गए थे।

इस यात्रा में एक नए द्वीप का पता लगा परन्तु वह सोने का देश नहीं मिला जिसने योरप में इतनी उत्सुकता उत्पन्न कर दी

थी। लोगों का प्रचुर धन पाने का स्वप्न प्रत्यक्ष न होने से उनमें बड़ी निराशा उत्पन्न हुई। कोलम्बस के बहुत से शत्रु उत्पन्न हो गए, स्पेन के राजा तक बहुत उलटी सीधी बातें पहुँचने लगीं। अन्त में इन द्वीपों से कुछ बहुमूल्य वस्तुएँ लेकर वह स्पेन लौट आया। अब की बार इसका उस प्रकार स्वागत नहीं हुआ।

तीसरी बार १४९८ ई० में उसे फिर नई दुनिया की यात्रा करनी पड़ी। इस समय तक भी उन द्वीपों के निकट भारतवर्ष ढूँढ़ निकालने की आशा कोलम्बस को बनी थी। इस कारण उसने अपना मार्ग परिवर्तित कर दिया। उसकी धारणा थी कि पश्चिमी भारत के द्वीपों के दक्षिण पश्चिम दिशा में कहीं भारत-वर्ष है इस कारण कुछ जहाज़ों को उसने द्वीप-समूहों में भेज दिया और शेष को लेकर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ा। कुछ दूर तक तो यात्रा साधारण रही परन्तु अधिक दक्षिण बढ़ने पर अत्यधिक गर्मी का सामना करना पड़ा। स्पेन वाले कभी इतने दक्षिण नहीं गए थे। इस कारण इस गर्मी से उनको बड़े संकट में पड़ना पड़ा। कोलम्बस ने इस समय भी धैर्य को नहीं छोड़ा परन्तु उसे गठिया और ज्वर ने आ घेरा। इस कारण द्वीप-समूहों की ओर जाने के लिए उत्तर पश्चिम दिशा में जहाज़ों को मोड़ना पड़ा।

आधा मार्ग तै करने पर समुद्र में वायु के तीव्र न होने पर भी प्रचंड धारा दिखाई पड़ी। बड़ी कठिनाई से इस संकट से छुटकारा पाने पर ट्रीनीडाड द्वीप मिला। कोलम्बस ने धारा की

प्रचंडता के कारण पर विचार किया। उसे मीलों तक समुद्र का जल नदी की तरह दिखाई पड़ता था इस कारण उसने निष्कर्ष निकाला कि कोई बहुत बड़ी नदी समुद्र में आकर गिरती है। वहाँ पर सचमुच दक्षिण अमेरिका की ओरिनिको नदी समुद्र से मिलती थी। यद्यपि ओरिनिको दक्षिणी अमेरिका की सबसे बड़ी नदी नहीं है तथापि उसका आकार योरप की छोटी २ नदियों की अपेक्षा बड़ा है। ऐसी बड़ी नदी का किसी द्वीप में होना सम्भव नहीं था। यह किसी विस्तृत देश में ही हो सकती थी। इस बात से कोलम्बस को विश्वास हो गया कि वह भारतवर्ष के समीप पहुँच गया है। अपने अब तक के स्वप्न को वास्तविकता में परिणत होते देख उसने ट्रीनीडाड में उतर कर वहाँ के मूल निवासियों से पूछताछ की। वह उस समय अपनी तीन यात्राओं के फल-स्वरूप इस देश का पता लगाने से चूक नहीं सकता था परन्तु जहाज़ों को दुरवस्था और मल्लाहों के घोर असन्तोष ने पश्चिमी भारत के द्वीपसमूहों में लौट चलने के लिए विवश किया।

रुग्णता और थकावट से व्यथित होकर द्वीप-समूहों में पहुँचने पर कोलम्बस को बड़ी विकट स्थिति देखनी पड़ी। उपनिवेश की बड़ी दुर्दशा हो रही थी। स्पेन वालों में पारस्परिक कलह तांडव-नृत्य कर रहा था। किसी प्रकार उसने इन उपद्रवों को शान्त किया और अपनी यात्रा तथा उपनिवेश की दुर्दशा का सब विवरण लिखकर स्पेन भेजा। उपद्रवी लोगों में एक व्यक्ति रोल्डन नाम का था। उसके दुर्व्यवहार को उसने लिखकर स्पेन

के राजा के पास भेज दिया परन्तु जिन जहाज़ों को कोलम्बस ने स्पेन को लौटाया उन्हीं में यह व्यक्ति भी स्पेन चला गया। उसने अपने दोषों का प्रतिवाद कर राजा को कोलम्बस के विरुद्ध उभाड़ा और भी कितने द्वेष रखने वाले व्यक्तियों ने कोलम्बस के विरुद्ध राजा के कान भर दिए।

राजा ने इन बातों में आकर बोवाडिला नामक एक आदमी को इस सम्बन्ध में भेजा। उसने उपनिवेश में पहुँचते ही शासन-सूत्र अपने हाथ में ले लिया। कोलम्बस बन्दी बना लिया गया। उसे हथकड़ी बेड़ी डाले वहाँ से विदा होना पड़ा। अब तक की यात्राओं में स्पेन ने जो कुछ व्यय किया था वह असीम धन हाथ लगने की आशा से ही किया था। कोलम्बस ने एक नई दुनिया को ढूँढ़ तो निकाला था और स्पेन का गौरव भी बढ़ाया था परन्तु स्पेन वालों की अर्थलिप्सा शान्त करने वाली बूटी उसे नहीं मिल सकी थी। इस कारण स्वर्ण-कंकण के स्थान पर लोहे की कड़ियों ने अभागे कोलम्बस के हाथ पैरों को जकड़ कर योरप की जनप्रवृत्ति का नग्न चित्र सामने रक्खा।

कोलम्बस ने इतनी आपत्तियों को झेलते हुए भी एक बार फिर भारत को ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न करने का साहस किया। इस चौथी यात्रा में उसे चार जहाज़ मिल सके। उसने तीसरी यात्रा में आभास मिले हुए देश की ओर जाने का विचार किया परन्तु जहाज़ साधारण थे, मार्ग में ही उनकी दशा शोचनीय हो गई। विवश होकर उसे पश्चिमी भारत द्वीप-समूहों में जाना पड़ा।

जिस उपनिवेश का कोलम्बस जन्म देने वाला था उसी उपनिवेश में उसे इस यात्रा में शरण पा सकना कठिन हो गया। इसके जहाज़ बड़ी दुरवस्था में थे इस कारण वह उन्हें बदलना चाहता था परन्तु उपनिवेश का शासक इतना नीच था कि जहाज़ बदला करने की बात तो दूर रही, समुद्र में भयंकर तूफान उठने का लक्षण दिखाई देने पर भी उसने कोलम्बस को पोत-स्थल में आश्रय न लेने दिया। उसकी अमानुषिकता सीमा उल्लंघित कर चुकी थी। निदान कोलम्बस के अनुमान के अनुसार भयंकर तूफान उठा। उसी समय स्पेन के जहाज़ों का एक बेड़ा माल-असबाब से लदा हुआ योरप के लिए विदा हो रहा था, उस पर तूफान का बुरी तरह आक्रमण हुआ। इस कारण १८ जहाज़ों में से किसी प्रकार दो एक जहाज़ सकुशल बच सके, शेष सब के सब नष्ट-भ्रष्ट हो गए। उन्हीं के साथ क्रूरात्मा रोल्डन, बोवाडिला और अन्य व्यक्ति भी कोलम्बस को बन्दी बनाने और पश्चिमी भारत के मूलनिवासियों के प्रति किए गये अत्याचारों के फल-स्वरूप अपनी करतूत का फल भोगने के लिए वरुण देव के उदर में चले गए।

यहाँ से विदा होने पर कोलम्बस ने उस लक्ष्य की ओर यात्रा की जिसके लिए उसने स्पेन छोड़ा था परन्तु भारत महासागर को जानेवाले किसी मार्ग का पता न चला। उसने इस यात्रा में अमेरिका के किनारे की यात्रा की जिसके एक ओर योरप तक फैला हुआ अटलांटिक महासागर और दूसरी ओर एशिया तक

फैला हुआ विस्तृत प्रशान्त महासागर है। स्थल डमरुमध्य के समीप होने पर भी उसे भूमि-खंड में घुसने का अवसर नहीं मिला जिससे एशिया के समीप तक विस्तृत महासागर का रहस्य खुल सके। उसे क्या मालूम था कि जिस जल-पथ की खोज के पीछे वह अपने जीवन की सारी अवधि समाप्त करने जा रहा था उसका रहस्य इतने थोड़े अन्तर पर छिपा हुआ था। भारत के जल-मार्ग की प्रतीक्षा में उसने चार बार अटलांटिक महासागर की लम्बी यात्रा की परन्तु अन्त तक उसका पता नहीं लग सका। निदान चौथी यात्रा ने भी उसका लक्ष्य पूरा नहीं किया। इतनी अर्चना करने पर भी निष्ठुर भारत देव ने दर्शन नहीं दिया।

स्पेन लौटते समय जो जहाज़ कोलम्बस के साथ थे उनमें दो तो यात्रा के लिए अनुपयुक्त हो गए थे, शेष तूफान में बह गए। स्पेन लौटने के लिए उपनिवेश से दो जहाज़ मिले। उस में भी एक मार्ग में ही नष्ट-भ्रष्ट हो गया, दूसरे से किसी प्रकार यात्रा समाप्त हुई। उसने अपने प्रति किए गए व्यवहारों की दरबार में शिकायत की परन्तु कुछ भी सुनवाई नहीं हुई। अन्त में सन् १५०६ ई० में ५९ वर्ष की अवस्था में इस जीवन-यातना से उसे सदा के लिए मुक्ति मिल गई।

१०—मध्य और दक्षिणी अमेरिका की खोज



दि हम भूमंडल के मानचित्र को गोले पर देखें तो हमें पता चलेगा कि उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका के महाद्वीप उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव के समीप तक फैले हैं। उत्तर में तो स्थलखंड बिलकुल ध्रुव तक चला गया है। परन्तु दक्षिण में ध्रुव के बहुत पहले ही समाप्त हो गया है। अतएव जल-मार्ग द्वारा इन के पूर्वी तट से पश्चिम की ओर दक्षिणी छोर होकर जाया जा सकता है। ये दोनों महाद्वीप मध्य में एक पतले स्थल-खंड के द्वारा मिले हुए हैं जो पानामा स्थल डमरूमध्य नाम से विख्यात है। आज-कल इस स्थल-डमरूमध्य को काट-कर पूर्व के अटलांटिक महासागर को पश्चिम की ओर के महासागर से मिला दिया गया है। इस नहर के बन जाने से योरप वा अफ्रिका से चले हुए जहाज़ अटलांटिक पारकर सीधे प्रशान्त महासागर में पहुँच सकते हैं जिसको पार कर वे चीन, जापान वा अन्य एशियाई देशों तक पहुँच सकते हैं।

जिस समय कोलम्बस ने अटलांटिक महासागर पार कर मेक्सिको की खाड़ी के समीप स्थित पश्चिमी द्वीप-समूहों वा महाद्वीप के तट का पता लगाया था उस समय उसे ज्ञात नहीं था

कि ये कोई नए महाद्वीप हैं और इनके पश्चिम प्रशान्त महासागर को पार कर एशियाई देशों में पहुँचा जा सकता है। उसकी इस धारणा को असत्य ठहरा कर इन नए भूखण्डों को नई दुनिया नाम से पुकारने का श्रेय अमेरिगो वेसपुक्की नाम के एक नाविक को है जिसके नाम पर ये महाद्वीप अमेरिका नाम से अब तक पुकारे जाते हैं।

जिस समय एशिया के धनागर की खोज में चलकर कोलम्बस ने इस नए भूखंड को भारत वा उसके समीप के द्वीप समझ इनके निकट पहुँच जाने का समाचार योरप में जाकर सुनाया था उस समय इस नए भूखंड की यात्रा करने की लोगों मे बड़ी व्यग्रता उत्पन्न हो गई थी और एक के पश्चात् दूसरे नाविकों ने अपने भाग्य की परीक्षा के लिए अटलांटिक महासागर की यात्रा प्रारम्भ की थी। उन्हीं में एक वेसपुक्की भी था। यह इटली देश का रहने वाला था और सन् १४५२ ई० में फ्लोरेंस नगर में इसका जन्म हुआ था। इसने व्यापारी होने के कारण कोलम्बस की दो यात्राओं में लाभ की आशा से कुछ योग दिया था। इसने स्वयं नई दुनिया की चार बार यात्रा की।

इसकी पहली यात्रा सम्भवतः सन् १४९७ ई० में हुई थी। कोलम्बस के साथ जिन नाविकों ने उसकी प्रारम्भिक यात्राओं में साथ यात्रा की थी उनमें विंसेंट पिंज़न नाम का एक नाविक भी थी। सन् १४९७ ई० में इसने धन पाने की लालसा से स्वयं अटलांटिक महासागर की यात्रा की थी। इस यात्रा में वेसपुक्की भी

उसके साथ था। इस यात्रा में इन लोगों का जहाज़ पहले मध्य अमेरिका की होंडुरास अंतरीप के समीप पहुँचा। यहाँ पर महाद्वीप के स्थल खंड का पहले पहल दर्शन किया जा सका।

यहाँ से पश्चिम की ओर चलकर होंडुरास की खाड़ी होकर ये लोग यूकाटान पहुँचे। फिर युकाटान का चक्कर लगाकर मेक्सिको की खाड़ी होते हुए फ्लोरिडा पहुँचे। वहाँ से उत्तर की ओर स्थलखंड के किनारे किनारे कुछ दूर तक जा कर ये अपने देश को पूर्व की ओर लौट पड़े। मार्ग में इन्हें बर्मुला द्वीप मिला जहाँ पर मनुष्य-भक्षी लोगों का निवास था। वहाँ पर युद्ध कर २०० से भी अधिक मनुष्यों को दास बनाकर इन्होंने जहाज पर चढ़ा लिया और उन्हें बेचकर कुछ धन पाने की आशा से स्पेन ले गए। यह यात्रा अर्थ-लाभ की दृष्टि से बिल्कुल असफल रही।

पिंज़न की भाँति एक दूसरा प्रसिद्ध नाविक एलोंज़ो डी ओजेडा था जिसने कोलम्बस के साथ उसकी दूसरी यात्रा में यात्रा की थी। इसने भी अपनी भाग्य-परीक्षा के लिये सन् १४९९ ई० में स्वतंत्र रूप से अटलांटिक महासागर की यात्रा की। वेसपुक्की इसके साथ भी था। यह वेसपुक्की की दूसरी यात्रा थी। इसके जहाज़ स्पेन से चलकर दक्षिणी अमेरिका के मुख्य स्थलखंड के उत्तरी तट पर ट्रीनीडाड द्वीप के ५०० मील दक्षिण पहुँचे। वहाँ से कुछ दिन तक दक्षिण-पश्चिम की ओर यात्रा होती रही परन्तु धारा के वेग के कारण विवश होकर मार्ग बदलना पड़ा और उत्तर-पश्चिम चलकर महाद्वीप के उस भूखंड के समीप पहुँचे

जिसका पहले कोलम्बस ने अन्वेषण किया था। इस प्रकार दूर तक दक्षिणी अमेरिका के उत्तरी तट और द्वीपों की खोज हुई परन्तु मनोवांछित स्वर्ण-कोष उपलब्ध न हो सका जिसकी खोज में वे निकले थे।

इस प्रकार कितने ही यात्री योरप से चलकर नए भूखंड में लोगों द्वारा सुने हुए विपुल धन प्राप्त होने की आशा से यात्रा करते रहे। उनमें से कुछ सोना चाँदी नए स्थल-खंड में कहीं से प्राप्त कर योरप लौटते और कितने बिल्कुल निराश लौटते, फिर भी दूसरे यात्रियों का आना न रुकता। उन्हें कहीं न कहीं छिपे सोने चाँदी का भंडार मिल जाने की आशा लगी रहती। इन यात्रियों के प्रयत्न स्वरूप अमेरिका महाद्वीप के विस्तार का अधिकाधिक ज्ञान होता गया यद्यपि भौगोलिक अन्वेषण उनका मूल अभिप्राय न था।

इन्हीं यात्रियों की भाँति पहले प्रयत्न में कुछ धन हाथ न लगने पर भी पिंज़न ने १४९९ ई० में फिर दुबारा यात्रा की थी। इस दूसरी यात्रा में उसने दक्षिण की ओर भूमध्य रेखा पार कर दक्षिण अमेरिका के पूर्वी भाग तक पहुँचने में सफलता प्राप्त की। इस भाग में ब्राज़ील नाम की लकड़ी का बाहुल्य था जो पहले एशिया के पूर्वी देशों से योरपवालों को प्राप्त होती थी इस कारण यह प्रान्त ब्राज़ील नाम से प्रसिद्ध हुआ। पिंज़न ही पहला व्यक्ति था जिसने दक्षिणी अमेरिका के तट की ओर पहले-पहल भूमध्य रेखा को पारकर दक्षिण तक यात्रा की थी। ब्राज़ील के तट तक

पहुँचकर पिंजन ने दक्षिण में आगस्टाइन अन्तरीप तक यात्रा कर फिर लौटकर पश्चिम की ओर यात्रा की। इस यात्रा में उसने पहले-पहल संसार की सब से लम्बी नदी आमेज़न के दर्शन किए। इस नदी को देखकर उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। इसका मुहाना १०० मील की चौड़ाई में फैला हुआ था।

जिस वर्ष पिंज़न ने ब्राज़ील का अन्वेषण कर उस पर स्पेन देश के राजा को अधिकारी बनाया उसी वर्ष एक पुर्तगाल का नाविक भी ब्राज़ील में पहुँचा। इसका नाम पेड्रो केबरल था। यह १३ जहाज़ों के बेड़े के साथ लिस्बन से रवाना होकर अफ्रिका के तट के मार्ग से पूर्वी द्वीप-समूहों की यात्रा कर रहा था। मार्ग में भूमध्य रेखा के समीप इसके जहाजों के अधिक पश्चिम आ जाने के कारण समुद्री धाराओं ने उसे पश्चिम की ओर बहा दिया और वह ब्राज़ील जा पहुँचा।

उन दिनों पोप ने संसार में कहीं भी ज्ञात होनेवाले देशों को पुर्तगाल वा स्पेन के ही आधिपत्य में होने का यह निर्णय कर दिया था कि योरप से पश्चिम कुछ निश्चित दूरी पर एक कल्पित रेखा उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक खींची मान ली गई थी। इस कल्पित रेखा से पश्चिम मिले हुए देश पर स्पेन का अधिकार हो सकता था और इसके पूर्व के देशों पर पुर्तगाल का। केबरल ने हिसाब लगाकर देखा कि ब्राज़ील उस रेखा के पूर्व ही पड़ता है। इसलिए उस पर पुर्तगाल देश का अधिकार हो गया।

जब पुर्तगाल-नरेश ने अपने अधिकार में पश्चिम की ओर

अटलांटिक महासागर में एक देश अपने अधिकार में आने का समाचार सुना तो उसके सम्बंध में विशेष पता लगाने के लिए उसने एक जहाजों का बेड़ा भेजने का निश्चय किया। उस बेड़े में वेसपुक्की यह अनुसंधान-कार्य करने के लिए भेजा गया। वेसपुक्की अपनी दो यात्राओं में स्पेन के राजा की अधीनता में था परन्तु अब उसने पुर्तगाल देश के राजा के यहाँ नौकरी करली थी। फलतः उस की तीसरी और चौथी यात्राएँ पुर्तगाल-सम्राट की अधीनता में हुईं।

इस अनुसंधान-कार्य के लिए १४ मई सन् १५०१ ई० को तीन जहाज रवाना हुए। १६ अगस्त को इस बेड़े के साथ वेसपुक्की ब्राज़ील में सेंट रोक अन्तरीप के समीप पहुँच सका। यहाँ की भूमि बड़ी सुरम्य थी परन्तु यहाँ के निवासियों ने इनके प्रति मैत्री भाव न दर्शाया और युद्ध के लिए तत्पर हुए। पीछे दो व्यक्ति भूखंड का अन्वेषण करने के लिए भेजे गए परन्तु उनका पता न चला। फिर एक और व्यक्ति भेजा गया जो कसरती पहलवान था। उसने अपनी कसरत दिखलाकर वहाँ के मूल निवासियों को विस्मित करना प्रारम्भ किया, परन्तु इतने में ही पीछे से एक स्त्री ने चुपके से आकर उसका गला काट दिया। परन्तु यह दृश्य यहीं समाप्त नहीं हुआ। उन जंगली लोगों में से कुछ इस शव को घसीट ले गए और बाकी बाण चलाने लगे। किसी प्रकार इन यात्रियों ने अपने हथियार से अपनी रक्षा की। जंगली लोगों ने शव को टुकड़े टुकड़े काटा और पका कर उसे खा लिया।

सम्भवतः यही दशा पहले के दो यात्रियों की भी हुई होगी। यात्रियों ने इसका बदला लेने का इसलिए प्रयत्न नहीं किया कि शायद भविष्य में उन मूल निवासियों से अच्छा सम्बन्ध हो सके।

वहाँ से चल कर बेड़ा सेंट आगस्टाइन अंतरीप के समीप पहुँचा जहाँ तक पिंजन पहले यात्रा कर चुका था। इसके आगे वे स्थल खण्ड के किनारे किनारे दक्षिण की ओर आगे बढ़ने लगे। मार्ग में कहीं कहीं भूखंड पर भी ठहरने लगे। उन स्थानों में कहीं पर तो मूल निवासी मित्रवत् व्यवहार करते थे और कहीं विरोध प्रकट करते थे परन्तु उन सभी स्थानों का दृश्य बड़ा ही मनोरम था। यद्यपि वहाँ के निवासी अधिकांश मनुष्य-भक्षी थे परन्तु मनोमोहक जलवायु, विचित्र और सुन्दर जन्तु, पक्षी तथा पेड़ इतने आकर्षक थे कि यात्रियों ने अनुमान किया कि भूतल पर की इन्द्रपुरी कहीं इसके समीप ही होगी।

ऐसे दृश्यों को देखते हुए वे कुछ सप्ताह की यात्रा के पश्चात् एक खाड़ी के समीप पहुँचे जिसका नाम उन्होंने रियोडी जैनेरो रक्खा। इसके आगे तट की यात्रा करते हुए ही वे १५ फरवरी को लाप्लाटा नदी के मुहाने को पार कर गए। इस स्थान पर पहुँचने पर वेसपुक्की ने देखा कि वह पोप द्वारा घोषित की हुई कल्पित रेखा से दूर पहुँच रहा है जहाँ पुर्तगाल देश का आधिपत्य नहीं हो सकता, इस कारण उसने किनारे किनारे आगे न बढ़कर दक्षिण-पूर्व की ओर समुद्र में यात्रा करने का निश्चय किया

जिससे कल्पित रेखा के पूर्व ही पुर्त्तगाल के शासन-क्षेत्र में कोई नया भूखंड मिल सके।

इस यात्रा में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा और बेड़े तूफान में पड़कर दक्षिणी ध्रुव प्रदेश में पहुँच गए। इस प्रकार विशेषतापूर्वक उसने दक्षिणी शीत कटिबन्ध में यात्रा की। उसके पूर्व डियाज़ को छोड़ कर किसी भी व्यक्ति ने दक्षिणी ध्रुव प्रदेश में यात्रा नहीं की थी। उन लोगों को इसी यात्रा में दक्षिणी जार्जिया द्वीप मिला जिसे कप्तान कुक ने फिर दुबारा ढूँढ़ निकाला। यहाँ पर भूमि बहुत ही अनुर्वर, बर्फ़ीली, वनस्पतिहीन और बसने के अयोग्य थी और भयंकर आँधी, समुद्र की विकट लहर और तूफान के साथ साथ बहुत अधिक सर्दी का भी सामना करना था। इस कारण प्राणों का संकट देख यात्री शीघ्र ही अपने देश को लौट चले।

जब ब्राज़ील का पता लगने पर दक्षिणी अमेरिका के विस्तृत समुद्र-तट का वेसपुकी ने अन्वेषण किया तो लोगों ने यह अनुभव करना प्रारम्भ किया कि यह भूखंड एशिया महाद्वीप का कोई भाग नहीं है प्रत्युत कोई नया ही महाद्वीप है। इस समय भी अधिक उत्तर के अन्वेषित उत्तरी अमेरिका के भूखंडों को लोग एशिया का भाग ही समझते थे और उसे दक्षिणी महाद्वीप के ज्ञात भाग ब्राज़ील से मिला हुआ नहीं समझते थे। वेसपुकी ने इस नए महाद्वीप को नई दुनिया के नाम से प्रसिद्ध किया।

वेसपुकी एक प्रभावशाली लेखक था। जब उसने इस नई

दुनिया का वर्णन कुछ पृष्ठों में लिखकर एक छोटी पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया तो उसकी बहुत ही अधिक खपत हुई। उसके कितने ही संस्करण निकले और अनेक भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हुए। जर्मन भाषा में अनुवादित इस यात्रा-वर्णन को देख कर सन् १९०६ ई० में वाल्सी मुलर नाम के एक जर्मन विद्वान् ने उद्‌घोषित किया कि अमेरिगो वेसपुक्को ने योरप, अफ्रिका और एशिया के तीन ज्ञात महाद्वीपों के अतिरिक्त एक चौथे महाद्वीप का लोगों को ज्ञान कराया है, इस कारण इस नए महाद्वीप को उसी के नाम पर पुकारना चाहिए। फलतः दक्षिणी अमेरिका का ज्ञात भाग उसी के नाम पर अमेरिगो वा अमेरिका प्रसिद्ध हुआ।

यहाँ पर यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि वेसपुक्की ने ब्राज़ील को पहले पहल ज्ञात नहीं किया। उसके पूर्व कितने ही नाविक यहाँ तक पहुँच चुके थे परन्तु उन नाविकों में से कोई भी बहुत अधिक दक्षिण तक तट का अनुसन्धान न कर सका था। वेसपुक्की ने पहले पहल उसके अधिक विस्तार का ज्ञान प्राप्त किया और उसे एशिया का भाग न मान एक नई दुनिया ही होना समझा। अतएव उसके नाम पर वह अमेरिका नाम से प्रसिद्ध किया जा सका। पहले दक्षिणी अमेरिका ही अमेरिका के नाम से पुकारा जाता था परन्तु धीरे-धीरे जब उत्तर के भूभाग भी इससे मिले हुए ज्ञात हुए तो नई दुनिया के दोनों महाद्वीप अमेरिका नाम से प्रसिद्ध हुए।

वेसपुक्की का अनुमान था कि नए अन्वेषित महादेश का कहीं दक्षिणी छोर है जिसका चक्कर लगाकर हिन्द महासागर में पहुँचना सम्भव होगा। इस अनुमान की सत्यता देखने के लिए उसने सन् १९०३ ई० में चौथी यात्रा की, परन्तु यह यात्रा सफल न हो सकी और इस खोज का गौरव एक दूसरे ही व्यक्ति को मिलना था।

पश्चिमी द्वीप-समूह और मध्य अमेरिका में स्पेनवालों ने जब अपना उपनिवेश स्थापित कर लिया था तो वहाँ से महाद्वीप के मुख्य स्थल भाग का अन्वेषण करना प्रारम्भ किया था। उनमें पिज़ारो की पेरू-यात्र तथा कार्टीज़ का मेक्सिको का अन्वेषण विशेष महत्पूर्ण हैं। उनका वर्णन अगले अध्यायों में किया जायगा। परन्तु इनके पूर्व न्यूनेज़ डी बलबोआ का पानामा डमरूमध्य पार प्रशान्त महासागर का पहले पहल ज्ञान प्राप्त करना बड़ा महत्वपूर्ण है।

कहते हैं यह स्पेन से चलकर किसी द्वीप में आ पहुँचा था। वहाँ के लोगों के ऋण से छुटकारा पाने के लिए इसे दूसरे स्थान पर जाने की इच्छा हुई। पास में पैसे थे नहीं, इसलिए चिन्ता में पड़ा रहा। संयोग से एक जहाज वहाँ आया। एक पीपा उसमें जानेवाला था, उसमें रात को जा छिपा। सवेरे पीपा लुढ़का कर जहाज में पहुँचाया गया। जहाज़ ने चलना प्रारम्भ किया। पीपे के अन्दर बलबोआ भी उसी जहाज़ से यात्रा कर रहा था। पानामा स्थल-डमरूमध्य के निकट किसी पोतस्थल पर जहाज़ ठहरा। बलबोआ वहीं उतर गया।

उस स्थान के निकट स्पेनवाले उपनिवेश स्थापित करने का प्रयत्न कररहे थे। लेकिन उनको सफलता न मिल सकी थी। बलबोआ ने अपने प्रयत्न से वहाँ उपनिवेश स्थापित करने में सफलता प्राप्त कर ली और वहाँ का शासक बन गया। वहीं पर सन् १५१० ई० में भीतरी स्थानों की यात्रा करते हुए उसने वहाँ के लोगों से सुना कि कुछ दूर पश्चिम की ओर एक बड़ा समुद्र है जिसके किनारे एक बड़ा सम्पन्न देश है। इस समाचार से अत्यंत प्रसन्न होकर उसने अनुमान किया कि वह देश भारतवर्ष ही है जहाँ पश्चिम के मार्ग पहुँचने के लिए कोलम्बस ने प्रयत्न किया था। इस कारण उसने यात्रा प्रारम्भ कर दी।

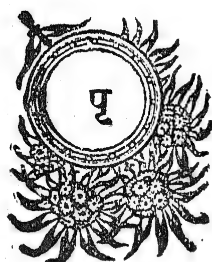
कुल यात्रा ६० मील की थी। परन्तु इतनी ही दूरी में सब प्रकार की विपत्तियों का अनुभव हो सकता था। मार्ग बिल्कुल विकट था और देश अपरिचित। बलबोआ ने अपने साथियों के साथ नित्य नई कठिनाइयों का सामना करते हुए निरन्तर छब्बीस दिनों तक यात्रा की तो उसे ज्ञात हुआ कि अगले दिन की यात्रा में वह पर्वत-शिखर मिलेगा जहाँ से दूसरे महासागर के दर्शन हो सकेंगे। दूसरे दिन सब ने पर्वत की कठिन चढ़ाई को पार किया। शिखर के निकट पहुँचने पर बलबोआ ने अपने साथियों को नीचे ही ठहरा दिया और अकेले शिखर पर चढ़ा जिससे पहले पहल स्वयं महासागर का दर्शन कर सके। शिखर पर पहुँचने पर उसे पहले पहल प्रशान्त महासागर ने दर्शन दिया। नई दुनिया के दूसरी ओर महासागर का दर्शन करनेवाला पहला योरोपीय व्यक्ति वही

था। उसने घुटने टेककर परमात्मा को धन्यवाद दिया जिसकी असीम कृपा से उसे संसार को एक नया संदेश सुनाने का अवसर मिला। सबने आगे चलकर यात्रा को समाप्त किया और उन्हें समुद्र-तट दिखाई पड़ा जिसके दूसरी ओर एशिया महाद्वीप था।

बलबोआ ने जिस सम्पन्न देश का नाम सुना था वह भारत नहीं था प्रत्युत वह सोने का देश दक्षिणी अमेरिका का पेरू प्रदेश था जो पानामा के दक्षिण स्थित था। उस देश तक की यात्रा करने के लिए बलबोआ ने अपने उपनिवेश को लौटकर जहाज बनाने का सामान एकत्र किया। उनके द्वारा पानामा के पश्चिमी किनारे उसका जहाज़ प्रशान्त महासागर में चलने के लिए तैयार हो गया किन्तु सोने के देश में पहुँचने के पूर्व किसी ने उसे तलवार के घाट उतार दिया और उसका सोचा न हो सका। उसने उस देश के असीम धन-हरण का मंसूबा बाँधा था लेकिन पानामा ने उसी का प्राण-धन हरण कर लिया।

———

११--पृथ्वी की परिक्रमा



थ्वी गोल आकार की है, इसका ज्ञान किस युग में किन किन देशों को रहा, इसका जानना तो साधारण व्यक्ति के लिए बड़ा कठिन है परन्तु इतना अवश्य है कि इस गोलाकार सिद्धान्त का ज्ञान चाहे जिन विद्वानों ने जिस युग में प्राप्त किया हो, इस तथ्य का प्रत्यक्ष अनुभव संसार ने चार पाँच शताब्दियों पूर्व ही किया है। पृथ्वी की गोलाई का परीक्षण यथार्थ रूप में उसी समय हो सकता था जब किसी भी गोल वस्तु की तरह पृथ्वी के चारों ओर भी परिक्रमा की जा सकती। परन्तु ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी तक किसी भी देश के पुरुष-पुंगव ने कभी पृथ्वी के चारों ओर घूम आने की कल्पना भी नहीं की थी। वह माना कि पूर्वी या पश्चिमी कितने विद्वानों ने पृथ्वी के गोलाकार पिंड होने के सिद्धान्त का ज्ञान प्राप्त किया था, परन्तु पृथ्वी के चारों ओर घूम आना कार्यान्वित हो सकता है या नहीं, यह एक प्रश्न था जिसका उत्तर उस अवधि तक संसार ने नहीं दिया था। इस उलझन को सुलझाने का गौरव मैगेलेन नामक व्यक्ति को प्राप्त है जिसने पहले पहल संसार की परिक्रमा की।

इस व्यक्ति का पूरा नाम फ़र्डिनेंड मैगेलेन था। जिस समय एशिया में अपने व्यापार का माया-जाल फैलाकर योरपवालों ने

अपनी धन-लिप्सा की पूर्ति करना प्रारम्भ किया था उस समय पूर्वी द्वीप-समूहों में अलबुकर्क के आधीन फर्डिनेंड मैगेलेन भी काम करता था। इन स्थानों में उसे बड़े बुरे ढंग से काम करना पड़ता था। इससे तंग आकर उसने पुर्तगाल की यात्रा की जिससे एक तो कार्य-प्रणाली में सुधार करवाने के लिए राजा से प्रार्थना कर सके, दूसरे अफ्रिका के किनारे से होकर एशिया को जानेवाले लम्बे जलमार्ग के स्थान पर पश्चिम की ओर से कोई छोटा मार्ग ढूंढ़ने का प्रयत्न कर सके। किसी कारण से पुर्तगाल के राजा ने उसकी इन दोनों बातों के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं किया।

मैगेलेन को अपने प्रयत्न में सफलता मिलने की बहुत कुछ आशा थी, इसलिए उसने कोलम्बस की भाँति पुर्तगाल से निराश होकर स्पेन के राजा के पास जाकर अपना मन्तव्य प्रकट किया। स्पेन के राज-दरबार ने उसकी योजना को स्वीकार कर लिया। अतएव उसके अधिकार में ५ जहाज़ों का एक बेड़ा कर दिया गया। जहाज़ सभी उत्तम कोटि के थे। उस पर कुल २३४ मल्लाह थे, जिनमें बहुत से पुर्तगाल और स्पेन के योग्य नाविक थे। १० अगस्त १५१९ ई० को उसने अपनी यात्रा प्रारम्भ की। अटलांटिक महासागर पार कर लिया गया और बेड़ा सकुशल दक्षिणी अमेरिका के तट पर भूमध्य रेखा से दक्षिण पहुँच गया। वहाँ से महाद्वीप के किनारे किनारे जहाज़ जाने लगे और मार्ग के प्रत्येक आखात और खाड़ी की खोज होने लगी। समय समय पर विपरीत वायु के चलने और किनारे की खोज करते जाने से यात्रा

बहुत धीरे धीरे की जा सकी।

१२ जनवरी तक केवल रिओडी लाप्लाटा नाम की नदी के मुहाने तक यात्रा की जा सकी। यह एक बड़ी नदी थी जिससे समुद्र का जलडमरूमध्य होने का धोखा होता था। मैगेलेन को विश्वास था कि दक्षिणी अमेरिका के दक्षिण भूमि का कहीं अंत अवश्य होगा और उसका चक्कर लगाकर प्रशान्त महासागर में जलमार्ग से जा सकना सम्भव होगा। इस कारण उसने अनुमान किया कि यहीं पर प्रशान्त महासागर से मिलनेवाला जलखंड है। अतएव इस बड़ी नदी में ऊपर की ओर जाकर उसने अपने अनुमान को सत्य देखना चाहा, परन्तु नदी के मीठे जल ने उसके अनुमान को निराधार सिद्ध कर दिया। इस कारण उसे लौटना पड़ा।

अब आगे के मार्ग में ऋतु बहुत कष्टदायक प्रतीत होने लगी। मल्लाहों ने व्याकुल होकर सेंट जुलियन पोतस्थल पर पहुंच कर जाड़ा वहीं बिता देने का विचार किया। वहाँ विश्राम करने पर भी स्थिति न सुधरने पर ऋतु की भयंकरता के कारण मल्लाहों में बड़ा असंतोष फैला। मैगेलेन ने जब यात्रा स्थगित न रखने का आग्रह किया तो इस भीषण और काल्पनिक स्थान की यात्रा से घबड़ाकर मल्लाहों ने खुले तौर पर विद्रोह खड़ा किया और मैगेलेन को लौट चलने के लिए बाध्य किया। मैगेलेन ऐसे संकटों का सामना कर सकने के लिए साहस रखता था। कुछ विश्वासपात्र मल्लाहों की सहायता से उसने विद्रोह के नेताओं का अंत कर विद्रोह को शान्त किया।

यात्रा की सफलता के लिये उसने बेड़ों को आगे बढ़ाया। कुछ दूर और दक्षिण जाने पर समुद्र का एक मुहाना दिखाई पड़ा। अमेरिका का दक्षिणी सिरा आ गया था। बेड़े के मल्लाहों ने अब तब बड़ी कठिन तपस्या कर ली थी। आगे अज्ञात मुहाने में बढ़ने का उन्हें साहस न हुआ। अपनी सफलता के आवेश में मैगेलेन ने स्वयं मुहाने में अपने जहाज़ को आगे बढ़ाया। आंधी, तूफान, चट्टान किसी भी प्रकार की बाधा उसे आगे बढ़ने से रोक नहीं सकती थी। बेड़े के दूसरे जहाजों ने भी मैगेलेन का साथ दिया। कई दिन के संकट के पश्चात् अंत में मुहाना पार कर लिया गया और विस्तृत महासागर सामने आगया।

मैगेलेन के आगे एशिया तक फैला हुआ महासमुद्र था। चीन, जापान, भारत वा पूर्वी द्वीप-समूह के सुमात्रा, जावा, बोर्नियो तथा मलका (मसाले का द्वीप) आदि एशियाई भूखंडों के लिए जल-मार्ग खुला हुआ था। कोलम्बस का मनोवांछित मार्ग सामने आगया था। समुद्र देव ने कोलम्बस की अभिलाषा को पूरी करने के लिए उसके संसार छोड़ देने के पश्चात् आज अपना रहस्य खोल दिया था। मैगेलेन ने अपने परिश्रम को सफल समझा। उसका हृदय खिल उठा। उसने परमात्मा को हार्दिक धन्यवाद दिया। इस मुहाने का नाम उसीके नाम पर मैगलेन का मुहाना रक्खा गया। थोड़े समय के विश्राम के पश्चात् आगे की अधिक विकट यात्रा प्रारम्भ की जा सकी।

लोगों के कथनानुसार मैगेलेन एशिया को पूर्व में बहुत दूर

तक फैला हुआ समझता था और पृथ्वी का आकार कुछ छोटा ही समझता था परन्तु इस भ्रमात्मक धारणा से उसे बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ा। पृथ्वी का आकार उसके अनुमान से बहुत बड़ा था और एशिया का आकार उतना बड़ा नहीं था जितना लोग समझते थे। इतनी लम्बी यात्रा कर लेने पर भी उसके सामने अभी बड़ा लम्बा मार्ग था। उसने आगे के मार्ग को छोटा समझ अपने थोड़े से ही सामान के साथ महासागर की यात्रा प्रारम्भ कर दी। इस कारण उसको विपत्तियों ने अपना भीषण रूप दिखाने में तनिक भी दया न की। उस बेचारे को क्या मालूम था कि लोगों की सुनी सुनाई बातों में पड़ने से पृथ्वी अपने विशाल आकार को प्रस्तुत कर इस प्रकार धोखा देगी।

मुहाने से प्रस्थान करने पर उसने उत्तर-पश्चिम की ओर चलना प्रारम्भ किया। वायु बिल्कुल अनुकूल और समुद्र शान्त था, इस कारण उसका बेड़ा सीधे मार्ग से जाने लगा। यह यात्रा इसी प्रकार इतने अधिक दिनों तक चलती रही कि लोगों को यह जान पड़ने लगा कि यात्रा का कभी अन्त न होगा। कुशल यही था कि मार्ग में प्रतिकूल वायु वा कष्टकर ऋतु का सामना नहीं था इसलिए मार्ग कटा जा रहा था, परन्तु बेड़े के चारों ओर जहाँ तक दृष्टि जाती थी जल ही जल दिखाई पड़ता था, कहीं पर न तो भूमि दिखाई पड़ती थी और न कोई दूसरा जलयान ही दिखाई पड़ता था। भोजन और जल का कष्ट मल्लाहों के लिए बड़ा संकट था। ज्यों ज्यों वे आगे बढ़ते त्यों त्यों भोजन

और जल कम हुआ जाता, इसलिए उनमें इनकी इतनी थोड़ी मात्रा बँट पाती कि जीवन रख सकना कठिन होने लगा। बहुत दिनों का रक्खा हुआ जल सड़ जाने पर बड़ी कृपणता से थोड़ा थोड़ा व्यय हो पाता। जिन बेचारों को रोग ने घेर लिया था उन्हें या तो उसी प्रकार विपत्ति की घड़ियाँ गिननी पड़तीं या मरते समय किसी प्रकार का आश्वासन पाए बिना जीवन-यातना से सदा के लिए छुटकारा पाना पड़ता। इसी प्रकार की विपत्तियाँ हैं जिनको झेलकर यात्रियों ने संसार को भू-मंडल के विस्तार का ज्ञान कराया है। इसी प्रकार के दुर्दिन थे जिनका सामना कर वीरों ने भविष्य के युग को सुन्दर रूप देने में योग दिया था। इस प्रकार के कड़ुवे अनुभवों ने ही भविष्य के समुद्र-यात्रियों को मार्ग की कठिनाइयों से आगाह किया परन्तु जब कोई इन कठिनाइयों का ही अनुभव न करता तो उनके प्रतिकार की आवश्यकता का ज्ञान किसी प्रकार कैसे संभव था ?

मैगेलेन को इसी दिशा की यात्रा करते हुए तीन मास चौबीस दिन व्यतीत हो चुके थे परन्तु भूमि का कहीं भी दर्शन नहीं हुआ था। अब तक की हुई यात्राओं में यही सबसे बड़ी यात्रा थी जिसकी सम्पूर्ण अवधि में समुद्र इतना शान्त था और वायु अनुकूल बहती रही, इस कारण इस महासागर का नाम प्रशान्त महासागर रक्खा गया जो अब तक चला आता है।

यात्रा से बिल्कुल निराश हो जाने पर चिन्ता से बहुत व्यथित हो मल्लाहों ने अकस्मात् कुछ दूर पर भूमि होने का अनुमान किया

जो धुँधले बादल की तरह समुद्र-तल से आकाश में उठी हुई दिखाई पड़ती थी। यह डूबने को तिनके का सहारा था। बड़ी उत्सुकता से मल्लाहों ने मस्तूल पर चढ़कर उस ओर दृष्टि दौड़ाई। जब उनको अपने सामने भूमि के दिखाई पड़ने का विश्वास हो गया तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। एक लम्बी भीषण समुद्र-यात्रा करने के पश्चात् वे लोग ६ मार्च १५२१ को एक छोटे द्वीप-पुंज में पहुँच गए। ये मेरियन नाम के द्वीप-पुंज थे। यहाँ के निवासियों की चोर-वृत्ति देखकर मैगलेन ने उनका नाम चोर-द्वीप रख दिया। यात्रा के विपद्ग्रस्त मल्लाहों को इनमें से प्रत्येक द्वीप पृथ्वी का स्वर्ग जान पड़ता था। इनमें सब लोगों ने स्वास्थ्य-लाभ किया। जो रुग्ण थे उनको शुद्ध जल-वायु और भोजन उपलब्ध होने से रोग से छुटकारा मिल सका। यहाँ विश्राम कर लेने के पश्चात् मैगेलेन ने जहाजों को फिर चलाया। आगे बढ़ने पर चीन के दक्षिण में स्थित फिलीपाइन्स द्वीप-समूह मिला, परन्तु इस सुन्दर भूमि तक पहुँच कर इतने महत्वपूर्ण कार्य को समाप्त करने का हर्ष मनाने का अवसर आने के पूर्व ही मैगेलेन के जीवन की घड़ी पूर्ण हो चुकी थी।

फिलीपाइन्स-निवासियों और यात्रियों के बीच एक झगड़ा खड़ा हो गया। फिलीपाइन्स के एक सशस्त्र जन-समूह ने यात्रियों पर आक्रमण कर दिया। मैगेलेन ने अपने साथियों के साथ वीरता से आक्रमण का सामना किया और इस युद्ध में आक्रमण करने वालों को परास्त भी होना पड़ा। परन्तु यात्रियों को

ऐसी च्रति उठानी पड़ी जिसकी कभी पूर्ति नहीं हो सकती। वीर मैगेलेन की आत्मा ने पृथ्वी की परिक्रमा पूरी होने के कुछ पूर्व ही शरीर का साथ छोड़ दिया।

अपने अध्यक्ष की मृत्यु से मल्लाहों को हार्दिक वेदना हुई परन्तु मैगेलेन के इतने अधिक दिनों के सम्पर्क से मल्लाहों ने अपने हृदय को कड़ा कर ऐसी विपत्ति का सामना कर भी अपने मन्तव्य को पूरा करने के लिए आगे बढ़ते जाना सीख लिया था। शेष यात्रियों ने यात्रा पूरी करने के लिए आगे बढ़ने का निश्चय किया। उन्हीं में से एक कप्तान बना दिया गया। इन्होंने समुद्र में बिखरे हुए बहुत से द्वीपों को देखा। आगे बढ़ने पर अकस्मात् बोर्नियो का बड़ा द्वीप दिखाई पड़ा। अंत में बेड़ा मलक्का या मसाले के द्वीप के समीप पहुँचा जिस पर पुर्तगाल वालों का शासन था। पुर्तगाल वालों को स्पेन के इस बेड़े को देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। जब उन्होंने यह सुना कि ये यात्री योरप से पश्चिम के मार्ग से हो कर वहाँ आ रहे हैं तब तो उनके विस्मय का ठिकाना ही न रहा। उस समय यह बात उनकी समझ ही में न आ सकी कि जिस मार्ग से वे मलक्का द्वीप तक आते थे ठीक उसके उलटे मार्ग से चल कर स्पेन वाले किस तरह उसी स्थान पर पहुँच गए।

उन दिनों व्यापार जगत में मलक्का द्वीप का बड़ा नाम था। स्पेन वालों ने वहाँ से अपने देश के लिए व्यापार का मार्ग खोल दिया। वहाँ का बहुत सा माल जहाज़ पर लादा गया और यात्रियों ने अपने देश के मार्ग का अनुसरण किया। उस समय बेड़े के

जहाज़ों में एक ही बच रहा था, शेष नष्ट हो गए थे। इस जहाज़ ने उत्तमाशा अंतरीप हो कर योरप के प्रचलित समुद्र-मार्ग से यात्रा की। जहाज़ सब विपत्तियों का सामना करता हुआ अंत में ७ सितम्बर १५२२ ईस्वी को स्पेन पहुँच गया जहां से यात्रा प्रारम्भ हुई थी। संसार के इतिहास में पृथ्वी की यही प्रथम परिक्रमा थी। इसमें कुल ३ वर्ष २८ दिन लगे थे।

इस प्रदक्षिणा ने लोगों की अल्पज्ञता के कारण स्पेन और पुर्तगाल देशों के मध्य एक बहुत बड़ा विवाद खड़ा कर दिया। उन दिनों ईसाई संसार में पोप की बड़ी प्रतिष्ठा थी। वह धार्मिक विवादों का अन्तिम निर्णायक तो था ही साथ ही दूसरी बातों में भी ईसाई राजाओं पर शासन चला सकता था। उसने किसी समय निर्णय किया था कि योरप के पश्चिम किसी निश्चित दूरी पर उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों के मध्य खिंची काल्पनिक रेखा के पश्चिम खोजे हुए देशों पर स्पेन देश का अधिकार होगा और उस रेखा के पूर्व अनुसन्धान किए देशों पर पुर्तगाल वालों का अधिकार होगा। उन दिनों ये ही दो देश समुद्र-यात्रा करने में प्रवृत्त थे इस कारण ऐसा निर्णय हुआ था। इस निर्णय के पश्चात् पुर्तगाल वालों ने अफ्रिका का चक्कर काटकर भारत और सुमात्रा, जावा, बोर्नियो, मलक्का (मसाले का द्वीप) आदि पूर्वी द्वीपसमूहों को ढूँढ़ निकाला था और पोप के निर्णय के अनुसार इन पर अधिकार जमाया था। पूर्व की ओर यात्रा करने पर ही ये देश मिलते थे परन्तु मैगेलेन की विचित्र सूझ के कारण पश्चिम की ओर

चलकर स्पेन के जहाज़ पूर्वी द्वीपसमूहों में पहुँचे तो पोप ही के निर्णय के अनुसार स्पेन ने उन द्वीपों पर अपना अधिकार बताया। यह एक बड़ा टेढ़ा प्रश्न था जिसका उस युग में आसानी से उत्तर नहीं दिया जा सकता था।

१२—मेक्सिको में स्पेनवासी



लम्बस की यात्राओं के पश्चात् जब स्पेन देशवालों ने पश्चिमी द्वीपसमूह में अपना उपनिवेश स्थापित करने में सफलता प्राप्त कर ली थी तो वे आस पास के समुद्र की यात्रा कर नए नए भूखंडों का ज्ञान प्राप्त करने लगे थे। उनके द्वीप-समूह के उत्तर पश्चिम मेक्सिको की खाड़ी थी जिसके किनारे मेक्सिको और उत्तरी अमेरिका महाद्वीप का मुख्य भाग था। इन स्थानों तक कुछ समय में इनका पहुँचना स्वाभाविक था। कहा जाता है पोर्टोरिको द्वीप के उपनिवेश का शासक जब पांसी डी लिअन था तो उसे वहाँ के मूल निवासियों ने बताया कि उत्तर की ओर कोई द्वीप है जिसमें एक ऐसा सोता है जिसका पानी पीने से वृद्ध और रुग्ण व्यक्ति भी तरुण हो जाता है। डी लिअन

ने सन् १५१२ ई० में इस सोते की खोज में उत्तर की ओर यात्रा की। फलतः उसे मेक्सिको की खाड़ी के उत्तर मुख्य महाद्वीप से मिला हुआ फ्लोरिडा प्रायद्वीप मिला।

डी लिअन को तो वह सोता नहीं मिल सका परन्तु इस खोज से स्पेन वालों का ध्यान खाड़ी के पश्चिम स्थित देश के अन्वेषण की ओर गया। इसी समय पश्चिमी द्वीप समूह के मुख्य उपनिवेश के शासक द्वारा वेलस्कीज़ नाम का व्यक्ति क्यूबा द्वीप को अधिकृत करने के लिए भेजा गया। उसने द्वीप पर अधिकार तो कर लिया परन्तु उस समय की नए भूखंड अन्वेषण की उत्कंठा से उसने तुरंत ही कारडोक नाम के एक व्यक्ति को एक छोटे बेड़े के साथ पश्चिम की ओर जाकर एक नए भूखंड का पता लगाने के लिए भेजा। फलतः कारडोना ने मध्य अमेरिका के युकाटान प्रायद्वीप की ओर यात्रा की। वहाँ किनारे कई स्थान पर ठहर कर उसे वहाँ के मूल निवासियों से जहाँ तहाँ कुछ युद्ध करना पड़ा।

अब तक स्पेन वालों को जिन जिन स्थानों में मूल निवासियों का सामना करना पड़ा था वे असभ्य थे और नंगे रहते थे। उनका सामना करना सुगम था परन्तु यहाँवाले सभ्य थे, रंगीन सूती कपड़े पहनते थे, ये हथियार चलाने में कुशल थे। ये अपना चेहरा रंगते थे और सिर को पक्षियों के पंख से सजाते थे। इनके घर पत्थर और गारे से सुन्दर रूप में बने हुए होते थे। इनके साथ युद्ध करना सुगम नहीं था। कई बार कारडोवा को

इनसे युद्ध करते पीछे हटना पड़ा। एक युद्ध में इनके दो आदमी पकड़ लिए गए जिनसे बहुत सी बातें ज्ञात हो सकीं और दुभाषिये का काम लिया जा सका। इस यात्रा के कारडोना को विशेष सफलता न मिली और इस यात्रा का पूरा विवरण क्यूबा में पहुँचाने के कुछ समय पश्चात् ही उसकी मृत्यु हो गई।

कारडोना के यात्रा-विवरण को सुनकर बेलाकीज़ ने एक दूसरे व्यक्ति को यूकाटान की ओर भेजा परन्तु कुछ विशेष कठिनाइयों का सामना होने से नया भूखंड अधिकृत करने में सफलता नहीं मिली। वेलास्कीज़ ने इसके पश्चात् एक तीसरा बेड़ा भेजने का निश्चय किया परन्तु उसे कोई उपयुक्त व्यक्ति नहीं दिखाई पड़ता था जिसकी अधीनता में वह यह बेड़ा भेजता। वेलस्कीज़ चाहता था कि नया भूखंड अधिकृत किया जाय जिसका वह एक मात्र शासक हो परन्तु यदि वह कोई बहुत ही योग्य और शक्तिशाली व्यक्ति नए भूखंड की विजय के लिए भेजता तो वह व्यक्ति स्वयं ही वहाँ अधिकार जमाता साथ ही वह स्वयं भी क्यूबा छोड़कर एक कठिनाई में पड़ना नहीं चाहता था। अतएव उसे ऐसे बेड़े नायक की आवश्यकता थी जो उसे पूरा विश्वास दिलावे कि अधिकृत भूमि का स्वामी वह स्वयं न बन कर उसे ही बनावेगा। किसी प्रकार फ़रनेंडो कार्टीज़ नाम के एक कुशल नाविक पर उसकी दृष्टि पड़ी और उसे यह कार्य सौंपा गया।

फ़रनेंडो कार्टीज़ स्पेन का रहनेवाला एक वीर पुरुष था। इसका मेडेलिन नामक स्थान में सन् १४८५ ई० में जन्म हुआ

था। यह एक अच्छे घराने का था। बालकपन में इसे वकालत की शिक्षा दी गई थी परन्तु वकील बनने की अपेक्षा इसने एक सैनिक बनना अच्छा समझा था। सन् १५०४ ई० में यह स्पेन के बसाए उपनिवेशों में आ पहुँचा था। वहाँ से क्यूबा को अधिकृत करने में यह वेलास्कीज़ के साथ गया था।

सन् १५१८ ई० में वेलास्कीज़ ने १० छोटे जहाजों के साथ ६५० आदमी, १८ घोड़े और कुछ साधारण तोपों को देकर कार्टीज़ को विजय-कार्य के लिए बिदा किया परन्तु वेलास्कीज बड़ा कमज़ोर और सन्देह करनेवाला था। उसे तुरन्त सन्देह हुआ कि कार्टीज़ उसके बताए हुए उद्देश्य को पूरा न कर स्वच्छन्द हो जायगा इस कारण तुरन्त ही उसे लौटाने के लिए निश्चय किया परन्तु कार्टीज़ कुशल व्यक्ति था। उसने एकबार प्रस्थान कर चुकने पर फिर पीठ फेरने का नाम न लिया और आगे बढ़ चला। सन् १५१९ ई० के मार्च मास में उसका बेटा यूकाटान के तट पर पहुँच गया। कार्टीज़ अपने शासक से झगड़ा करके आया था इस कारण उसे पीछे लौटने पर बड़े संकट का सामना करना पड़ सकता था अतएव उसे अपने उद्योग में किसी न किसी प्रकार विजयी होने में ही कल्याण था। इस बात का भली भाँति अनुभव कर उसने जीवन मरण का प्रश्न अपने सन्मुख उपस्थित देखा और अपने थोड़े आदमियों के साथ बड़ी वीरतापूर्वक आगे बढ़ने का कार्य प्रारम्भ किया।

निदान यूकाटान स्थल-खंड के भीतर टेबेस्को नाम के स्थान

तक इसकी सेवा पहुँची। वहाँ पर बहु संख्यक यूकाटान-निवासियों से युद्ध करना पड़ा। स्पेनवालों के पास घोड़े थे जिनको वहाँ वालों ने कभी नहीं देखा अतएव इसे और तोपों की गरज सुनकर भयभीत हुए और शीघ्र ही भगा दिए गए। टेबेस्को से आगे समुद्र-तट की चार दिन तक पश्चिम की ओर यात्रा कर वे मेक्सिको के तट पर सैन जुआन डी उलोआ स्थान पर पहुँचे। यहाँ उन्हें ज्ञात हुआ कि मेक्सिको एक बड़ा विस्तृत देश है यह एक समुद्र-तट से प्रारम्भ होकर दूसरे समुद्र के तट तक फैला है। यहाँ का सम्राट मांटिज़ूमा कहलाता है जिसकी अधीनता में ३० छोटे-छोटे राजा वा सरदार हैं।

मेक्सिको एक बड़ा समृद्धिशाली देश था। यहाँ सोने चाँदी का भंडार था। यहाँ के निवासी ऐज़टेक लोग थे जो बहुत सभ्य थे। यद्यपि योरोपीय लोगों की भाँति उन्हें रण-कुशलता और आग्नेयास्त्रों का ज्ञान नहीं था तथापि वे तीर बाण और अन्य हथियारों के चलाने में बड़े प्रवीण थे। ऐज़टेक लोगों में एक ऐसी किम्बदन्ती प्रचलित थी कि प्राचीन काल में उनके देश में कभी देवता आए थे परन्तु वे पूर्व की ओर चले गये थे। वे फिर लौटकर मेक्सिको में आने की इच्छा प्रकट कर गए थे। एक गौरांग जाति को देश वे अंदर आते देख माटिज़ूमा को बड़ा भय होने लगा था कि ये वही देवता हैं जो पूर्व की ओर से लौट आने को प्रतिज्ञा चुके हैं उसे आभास होने लगा कि ये देवता उसके स्थानपर मेक्सिको के सम्राट बन जायेंगे।

इन कल्पनाओं के कारण मांटिजूमा ने ज्यों ही स्पेनवालों को अपने देश के तटपर उतरते सुना त्यों ही राजदूतों को उनका परिचय और उद्देश्य जानने के लिए उनके पास भेजा। कार्टीज़ ने बड़े ठाट-बाट से मिलकर राजदूतों को बताया कि वह पूर्व के सबसे बड़े सम्राट स्पेन नरेश का प्रतिनिधि होकर वहाँ आया है और मांटिजूमा से कुछ विशेष बातें करने के लिए मिलना चाहता है। मांटिजूमा देश के मध्य भाग में एक ऊँची अधित्यका पर स्थित अपनी राजधानी मेक्सिको नगर में रहता था। उसके पास तुरन्त यह संवाद भेजा गया। जब उसने इन नवागन्तुकों को उससे भेंट करने की इच्छा प्रकट करते सुना तो उसके भय का ठिकाना न रहा। उसे चिन्ता हुई कि ये अवश्य ही पूर्व गए हुए देवता हैं और राज्य वापस लेने के लिए आए हैं। इस कारण उसने बहुमूल्य पदार्थों को भेंटस्वरूप भेजकर कहलवाया कि राजधानी का मार्ग बड़ा बीहड़ और कष्टप्रद है अतएव वे यहाँ न आवें। परन्तु इसका कुछ फल न निकला और कार्टीज़ ने राजधानी में पहुँचने का दृढ़ निश्चय किया। उसे बहुमूल्य भेंट देखकर अपने निश्चय में और भी दृढ़ता आई।

जिस समय कार्टीज़ तट पर पहुँचा था उसी समय उससे मांटिजूमा के आधीन समीप के एक प्रान्त के राजा ने कार्टीज़ से मित्रभाव प्रकट किया। वह माटिजूमा सम्राट के शासन से असन्तुष्ट होकर उसका शासन-जुआ हटाना चाहता था। इस राजा का प्रान्त ज़ेम्पोआला समीप ही था। इसी प्रकार अन्य प्रान्तों के

शासक भी मांटिजूमा से असन्तुष्ट थे। इन विरोधियों की सहायता से कार्टीज को विशेष सहारा मिला। कार्टीज़ ने अपना मुख्य कार्य प्रारम्भ करने के लिए तट पर एक उपयुक्त स्थान में एक दुर्ग बना लेना अच्छा समझा जिससे समय पर उसमें शरण लिया जा सके। इसके लिए उसने तट का अनुसंधान करने के लिए एक जहाज भेजा था। इस प्रकार ४० मील उत्तर एक बहुत ही उपयुक्त स्थान ज्ञात हो सका जहाँ सुभीते से दुर्ग बन सकता था। अतएव कार्टीज़ ने उस स्थान पर जाने का निश्चय किया। मार्ग में ही जेम्पोआला नगर पड़ता था इस कारण उसके राजा से मिला। उसने बड़ी विनतीपूर्वक माटिज़ूमा के शासन से उसे मुक्त करने की प्रार्थना की और सब प्रकार की सहायता देने का वचन दिया। निर्धारित स्थानपर पहुँचकर दुर्ग बनाकर उपनिवेश स्थापित किया गया जिसका नाम बेरा क्रूज़ प्रसिद्ध हुआ।

यहाँ से मेक्सिको के लिए प्रस्थान करने के पूर्व काटाज़ ने दो विशेष महत्व-पूर्ण कार्य किए। एक तो यह कि अब तक वह बेळा-स्कीज़ के अधीन एक नायक की भाँति काम कर रहा था। अब उसने नए उपनिवेश का अपने को शासक घोषित किया और सीधे स्पेन के सम्राट द्वारा अपने अधिकार की स्वीकृति पाने के लिए स्पेन नरेश के पास एक जहाज़ पर अपना प्रतिनिधि भेजा। साथ ही अब तक उसे जो बहुत सा धन हाथ लगा था उसका कुछ अंश भी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए भेंटस्वरूप भेजा। दूसरा कार्य उसने यह किया कि उसे थोड़े सिपाहियों के भरोसे

एक बड़े सम्राज्य पर विजय प्राप्त करना था। इस कारण अपनी सब शक्ति को लगा देने के अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नहीं था। इस बात का विचार कर उसने अपने साथियों को विशेष उत्साहित कर उसकी सम्मति से सब जहाजों को जला दिया जिससे वे लौटने का नाम न ले मरते दम तक उसका साथ देते रहें।

इस प्रकार सब कुछ तैयारी कर चुकने पर कार्टीज़ ने एक व्यक्ति की अध्यक्षता में १५० आदमियों को उपनिवेश में छोड़कर शेष सेना के साथ राजधानी की २६० मील लम्बी यात्रा प्रारम्भ की। इस यात्रा में उसके मित्र राजाओं के आदमी भी साथ थे। मार्ग में चोलुला नामक स्थान पर उसका सामना करने के लिए एक बहुत बड़ी सेना खड़ी थी परन्तु अपने मित्र राजा द्वारा सूचना पाकर कार्टीज़ इससे सजग हो गया और उसने वहाँ पर सावधानी से काम कर ६००० मनुष्यों को धराशायी कर आगे की यात्रा की इसके पूर्व एक दूसरे प्रान्त की सेना से भी उसे युद्ध करना पड़ा था परन्तु इनमें स्पेनवाले बराबर विजयी रहे। उनका बढ़ा चढ़ा हथियार ही उन्हें विचार प्रदान करने में सहायक रहा। इन युद्धों का माटिज़ूमा पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

इस प्रकार वेरा क्रुज से रवाना होने के तीन मास-पश्चात् नवंबर मास में जब कार्टीज़ ३५० स्पेनवासी और ६००० मित्र राजाओं के सिपाहियोंसहित मार्ग तै किया तो उन्हें वह सुरम्य घाटी दिखाई पड़ी जिसमें रमणीक मेक्सिको नगर बसा हुआ था। उस स्थान का दृश्य बड़ा ही मनोहारी और सुन्दर था खेत, बन और

जलकुंड उसकी शोभा को द्विगुणित कर रहे थे। विस्तृत वन में नाना प्रकार के सुन्दर और फलाच्छादित वृक्षों की शोभा वर्णनातीत थी। घाटी में अनेक झीलें थी जिनके तटपर नगर बसे हुए थे। मध्य में एक बड़ी झील के मध्य एक द्वीप पर मेक्सिको नगर बसा हुआ था। नगर में पहुँचने के लिए तीन पक्के बाँध थे जिनके अंत में कुछ दूर तक लकड़ी का पुल था जो हटाया जा सकता था। सम्पूर्ण दृश्य देखने पर एक स्वप्न का दृश्य दिखलाई पड़ता था।

निदान जब राजधानी निकट आई तो सहस्रों नगर निवासी बड़ी सज-धज से स्वागत करने के लिए खड़े मिले। इतने ही में स्वयं मांटीजूमा के आने की घोषणा की गई। पहले पूरे २०० चर नंगे पैर दो दो की पंक्ति बनाए बिल्कुल मौन धारण किए हुए सिर नीचे किए हुए दौड़ते आते दिखाई पड़े। इनके पश्चात् एक बहुत भड़कीला सेवकों का दल दिखाई पड़ा जिनके बीच सम्राट मांटिजूमा आ रहा था। वह चार आदमियों के कन्धे पर रक्खी स्वर्ण-जटित और नाना प्रकार के पंखों से सज्जित एक प्रकार की पालकी पर बैठा था। उसके ऊपर कुछ आदमी एक बहुत ही सुन्दर चँपोवा ताने हुए थे। उसके आगे तीन कर्मचारी अपने हाथ में स्वर्णनिर्मित दंड लिए थे जिसे समय समय पर वे ऊपर उठाते थे। उसके उठाते ही सभी लोग अपना सिर झुकाते और अपना मुँह ढक लेते मानों इतने बड़े सम्राट को देखने की उनमें क्षमता नहीं है।

इतनी सजधज और प्रतिष्ठा के साथ आकर मांटिजूमा स्पेन-वालों के समीप पहुँचा। उसे देखते ही सम्मान प्रदर्शन के लिए कार्टीज तुरन्त घोड़े पर से उतरा और उसकी ओर अकेले बढ़ा। उसी समय माठिजूमा अपनी पालकी से उतर पड़ा। कार्टीज़ ने योरोपीय शिष्टाचार के अनुसार उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हुए उसको अभिवादन किया। सम्राट ने अपने देश की प्रणाली के अनुसार हाथ को पृथ्वी से छुला कर फिर उसे चूमकर उसका उत्तर दिया। मेक्सिको देश की बड़ों के प्रति छोटों के सम्मान प्रदर्शन की यही प्रणाली थी। जब मांटिजूमा की प्रजा ने अपने सम्राट को इस प्रकार सम्मान प्रदर्शित करते हुए देखा तो उनके विस्मय का ठिकाना न रहा। वे मांटिजूम को संसार में सबसे बड़ा सम्राट समझते थे परन्तु स्वयं उसको एक विदेशी के सम्मुख झुकते देख स्तब्ध हो गए। इस प्रकार उन लोगों ने स्पेनवालों को अपने से उच्च एक दूसरी ही श्रेणी का मनुष्य समझ उनसे भय खाने लगे।

इस प्रकार स्वागत होने के पश्चात् कार्टीज़ के रहने के लिए राजधानी में एक राज प्रासाद दिया गया। वहाँ उसने अपनी रक्षा का पूर्ण प्रबंध किया परन्तु कुछ समय बाद मेक्सिको को अपने अधिकार में लाने के लिए कार्टीज़ ने एक अधिक साहसपूर्ण कार्य करने का निश्चय किया। उसने सोचा कि वह एक अन्य जाति के बीच में राजधानी के अंदर थोड़े सिपाहियों के साथ पड़ा है। यदि किसी प्रकार मांटिजूमा वा उसकी प्रजा विरोध प्रकट करे तो

उसका वहीं पर विध्वंस हो सकता है। इसके लिए उसने स्पेन निवासियों का आतंक वहाँ वालों पर छाये रहने के लिए उनके इतने प्रतिष्ठित सम्राट को बन्दी कर अपने अधिकार में रखने का विचार किया।

इसी समय समुद्र-तट के उपनिवेश पर मेक्सिको के एक अफसर ने आक्रमण कर कुछ सिपाहियों को मार डाला था और शेष बन्दी कर लिए गए थे। एक मृत सिपाही का कटा सिर सारे प्रांतों में घुमाया गया था जिससे वहाँ वाले समझ सके कि स्पेनवाले भी साधारण आदमी ही हैं। इस दुर्घटना के लिए कार्टीज़ ने मांटिजूमा को दोषी ठहरा अपने रहने रहने के लिए मिले भवन में बन्दी कर लिया। उसकी प्रजा ने इस अप्रतिष्ठा को सहन न कर विरोध प्रकट किया किन्तु दुर्बल आत्मा मांटिजूमा ने स्वयं उन्हें शान्त किया। उपनिवेश पर आक्रमण करनेवाला अफसर राजधानी में बुलाया गया और स्पेनवालों की आज्ञा से अपने पुत्र और कुछ आदमियों के साथ जीवित जला दिया गया। लोगों को भयभीत करने के लिए कार्टीज़ ने थोड़ी देर के लिए सम्राट को भी जंजीर पहना दिया जिससे लोग स्पेनवालों के प्राण-वध का परिणाम देख सकें।

इस प्रकार अपने विस्तृत साम्राज्य की राजधानी के अंदर सम्राट मांटिजूमा एक मुट्ठी भर विदेशियों द्वारा सहज ही बन्दी बना लिया गया और अपमानित हुआ। उसके बन्दी रहते ही सारा राज-कार्य उसी के नाम पर होता रहे परन्तु राज्य की

वास्तविक समस्त-शक्ति विदेशियों के हाथ में चली गई। इस प्रकार मेक्सिको पर पहली विजय प्राप्त की जा सकी परन्तु कार्टीज को अन्तिम रूप से इसको अधिकृत करने के लिए कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। वेलास्कीज ने इसको आज्ञा भंग कर विजय कार्य में संलग्न देख इसको दबाने के लिए एक बड़ी फौज भेजी थी परन्तु कार्टीज़ ने २०० सिपाहियों को राजधानी में छोड़ तट की यात्रा कर उस फ़ौज को हरा दिया और उसके अफसर को पकड़ लिया। इसके परिणामस्वरूप उस सेना के शेष सिपाही उसके साथ हो गए।

इस प्रकार अपनी शक्ति बढ़ाकर कार्टीज़ राजधानी में पहुँचा परन्तु फिर एक नया उपद्रव खड़ा हुआ। स्पेनवालों ने वहाँ वालों के देवमन्दिरों को नष्ट किया था जिससे उनमें जोश फैला और उन्होंने पुरोहितों के द्वारा प्रोत्साहन पा विरोध खड़ा किया। इसी समय माटिज़ूमा की मृत्यु हो गई और नया सम्राट हुआ। स्थिति ऐसी बिगड़ी की कार्टीज़ को अपनी सेना सहित राजधानी से लौटना पड़ा। परन्तु मार्ग में बड़े संकट का सामना करना पड़ा। एक स्थान पर उनका सामना करने के लिए बहुत बड़ी सेना खड़ी थी। वहाँ तक मार्ग में उसपर विष से बुझे वाणों का प्रहार होता रहा। अन्त में जब इतनी बड़ी सेना का सामना करना हुआ तो कार्टीज़ ने बड़े साहसपूर्वक उसका सामना करने के लिए अपने सैनिकों को आह्वान किया। मार्ग में उसकी तोपें और घोड़ों को शत्रुओं ने छीन लिया था इस कारण बड़ी कठिनाई

उपस्थित थी। परन्तु स्पेनवालों ने बड़ी वीरतापूर्वक एक घंटे तक युद्ध किया। स्वयं कार्टीज़ ने शत्रु सेना के मध्य घुसकर उनकी ध्वजा छीन ली। अन्त में स्पेनवालों की ही जीत रही। यह युद्ध ७ जुलाई १५२० ई० को हुआ था।

इस युद्ध के पश्चात् कार्टीज ने सम्पूर्ण मेक्सिको राज्य को अधिकृत करने का निश्चय किया। इसके लिए उसने अपने विश्वास-पात्र आदमियों को फौज और सामान जुटाने के लिए स्थान स्थान पर भेजा। राजधानी से लौटने के छः मास पश्चात् वह फिर नई शक्ति प्राप्त कर फिर उसे विजित करने के लिए चला। नए सम्राट ने अपनी राजधानी की रक्षा करने का प्रयत्न किया परन्तु कुछ ही सप्ताह तक वह सामना कर सका। स्पेनवालों ने नौका-निर्माण कर झील को पार कर लिया और राजधानी विजित कर ली गई। इस बार मेक्सिको सदा के लिए स्पेनवालों के अधिकार में आ गया। इस विजय के पश्चात् कार्टीज़ स्पेन नरेश की ओर से इस राज्य का शासक बनाया गया।

१३—दक्षिणी अमेरिका का स्वर्ण देश



स्पेन देशवालों ने जिस मुख्य उद्देश्य से नई दुनिया को ढूँढ़ निकाला था वह सोने का भंडार उपलब्ध करना था इन लोगों ने सुन रक्खा कि कहीं पर एक सोने का देश है जहाँ पर इसका असीम-भंडार मिल सकता है। उसे ये लोग एलडोरेडो नाम से प्रसिद्ध कर चुके थे। उसी काल्पनिक स्वर्ण देश की खोज में यात्रियों ने कठिन से कठिन यात्रा करना प्रारम्भ किया था। कार्टीज़ ने मांटीज़ूमा की बहुमूल्य भेंटों को देखकर अवश्य ही कल्पना की होगी कि सम्भवतः वह सोने का देश यही है। और उसकी कल्पना भी सब अंश में असत्य नहीं सिद्ध हुई। मेक्सिको में सोने चाँदी का बाहुल्य था। स्पेनवालों ने वहाँ से प्रचुर मात्रा में बहुमूल्य धातुओं को प्राप्तकर वहीं पर अपना शासनाधिकार भी जमाया था। जिस समय कार्टीज़ ने इस वैभवशाली देश पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना प्रारम्भ किया था उस समय पनामा स्थल डमरूमध्य के निकट बलबोआ ने उपनिवेश स्थापित करने में सफलता प्राप्त कर ली थी।

उस उपनिवेश में रहते हुए स्पेनवालों ने दक्षिण की ओर एक बहुत ही समृद्धिशाली देश में अपार सोने का भंडार होने की किम्बदन्ती सुनी थी। बलबोआ ने स्थल-डमरूमध्य को पार

कर जब प्रशान्त महासागर का पहले पहल दर्शन किया था तो उसे दक्षिण की ओर उस वैभवशाली देश का पता लगाने की इच्छा हुई परन्तु इस अभिलाषा के पूर्ण होने के पूर्व ही उसका प्राणान्त होगया। इस नए देश का ज्ञान प्राप्त करने का श्रेय एक दूसरे ही व्यक्ति को मिलना था। यह व्यक्ति फ्रांसिस्को पिजारो था।

संयोगवश पिजारो स्पेन के उसी प्रान्त का रहनेवाला था जिसका कि कार्टीज। परन्तु यह बहुत दरिद्र वंश का था और लड़कपन में सूअर चराया करता था। इसे पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। सन् १९०९ में यह भी अपने भाग्य-परीक्षा की आशा से नई दुनिया में आ पहुँचा। पनामा का उपनिवेश स्थापित करने में बलबोआ के साथ यह भी था। और इसने भी उसके साथ ही प्रशान्त महासागर तक के पहले स्थलखंड की यात्रा की थी। जब बलबोआ मर गया तो इसने कुछ वर्षों पश्चात् दक्षिण के सुने हुए देश की यात्रा करने का विचार किया। यात्रा के लिए पर्याप्त धन की आवश्यकता थी और यह बिल्कुल निर्धन था इस कारण दो और व्यक्तियों के साझे में नए देश की यात्रा करने का विचार किया गया। उन व्यक्तियों में एक तो एलमेगरो नाम का वीर सैनिक था और दूसरा एक धनी पादरी। इन दोनों की सहायता से यात्रा की तैयारी प्रारम्भ हुई।

पिजारो जिस नए देश की यात्रा करना चाहता था उसका नाम पेरू था। यहाँ का राजा इंका कहलाता था। मेक्सिको की भाँति यहाँ के लोग भी बड़े सभ्य थे और देश धन-से भरापुरा

था। यह दक्षिण की ओर समुद्र-तट पर ऐंडीज़ पर्वत की अधित्यका में स्थित था। पानामा से दक्षिण की ओर कुछ दूर तक किनारे किनारे जाने का कितने ही यात्रियों ने प्रयत्न किया था परन्तु वे समुद्र-तट के उतने ही अंश तक पहुँच पाये थे जो पहाड़ी और अस्वास्थ्यकर था और वे रोगग्रस्त हो जाते थे। इस कारण विशेष लाभ न होने से वे आगे नहीं जा पाते थे। पहले पहल पिज़ारो ने दूर तक समुद्र-तट की यात्रा करने का प्रयत्न किया।

पहिली यात्रा के लिए एक जहाज बनाया गया और उसके लिए बड़ी कठिनाई से ११२ व्यक्ति साथ जाने वाले थे। लोगों को उस ओर की पहली यात्राओं के कारण यात्रा की सफलता पर बार बार सन्देह होता था। किसी प्रकार पानामा उपनिवेश के शासक की आज्ञा प्राप्त कर २४ नवम्बर सन् १५२४ ई० में यात्रा प्रारम्भ की जा सकी। पिज़ारो जहाज के साथ था परन्तु अलमेगरो पानामा में ही रह गया और उसे कुछ समय पीछे एक छोटे जहाज पर कुछ आदमियों को साथ लेकर जाना निश्चय हुआ।

यह यात्रा बड़े कुसमय प्रारम्भ हुई थी। प्रारम्भ में ही तूफान और विपरीत वायु का सामना हुआ। इस कारण ७० दिनों तक विपरीत वायु और समुद्र की लहरों का सामना करते हुए थोड़ी दूर ही यात्रा की जा सकी। इतने दिनों तक संकट में पड़े रहने के कारण भोजन की सामग्री समाप्त हो गई। इसलिए तट पर कुछ पाने का उद्योग किया गया परन्तु वहाँ इतना घना और दलदल सहित जंगल था कि उसे काट कर भीतर घुस सकना बड़ा ही

कठिन था। आगे के तट पर एक स्थान पर कुछ जंगली बेर देख-कर उसने कुछ व्यक्तियों के साथ वहीं डेरा डाल कर आधे आद-मियों के साथ जहाज को खाद्य पदार्थ लेकर आने के लिए लौटा दिया। वहाँ तट पर बड़ी कठिनाई से निर्वाह होने लगा। यात्री बीमार पड़ कर कृश काय हो गए और कितने मृत्यु के गले में चले गए। इस प्रकार निरंतर ६ सप्ताह तक प्रतीक्षा करने के पश्चात् जहाज़ फिर लौट सका। जब जहाज़ पर के साथियों ने तटपर पिज़ारों के साथ यात्रियों की अवस्था देखी तो पहले पहचान न सके।

तट पर ठहरने में एक बात उत्साह प्रदान करनेवाली हुई थी। भूखंड में भीतर की ओर जाने पर यात्रियों ने एक गाँव देखा था जहाँ के निवासी उन्हें देखकर भाग गए थे। पिज़ारों ने मित्र-भाव प्रदर्शित कर जब उनको पास बुलाया था तो उन मनुष्यों के शरीर पर शुद्ध सोने के भारी भारी गहने लटके दिखाई पड़े थे। इसे देखकर पिज़ारों को विश्वास हुआ कि उसकी यात्रा निष्फल नहीं जा सकती और स्वर्ण-भंडार अवश्य मिल सकेगा। अतएव अपने साथियों के आ जाने पर उसने और आगे बढ़ने का साहस किया। आगे बढ़ने पर तट की अवस्था अच्छी दिखाई पड़ी और एक स्थान पर एक बहुत बड़ी बस्ती भी मिली परन्तु वहाँ के निवासियों से इन यात्रियों को युद्ध करना पड़ा जिसमें ५ यात्री मार डाले गए। इस कड़े अनुभव से पिज़ारों ने यह देखा कि आगे के समुद्र-तट की यात्रा के लिए विशेष तैयारी

की आवश्यकता है। साथ ही उसका जहाज भी काम न देने लगा था इस कारण इस पहिली यात्रा में असफल होकर वह लौट गया। उसके साथी ने पहले के निश्चय के अनुसार एक छोटे जहाज पर दूर तक यात्रा की थी परन्तु पिज़ारों का कहीं पता न पाकर लौट गया था।

दूसरी यात्रा विशेष तैयारी के साथ की गई। उसमें दो जहाज थे और मनुष्यों की संख्या पहले से अधिक थी और लड़ाई के हथियार और कवच की विशेष व्यवस्था थी। एक रुइज़ नामक नाविक भी साथ था जिसे इस ओर के समुद्र का ज्ञान था। इस प्रकार २ वर्ष के पश्चात् यह यात्रा प्रारम्भ हुई। जहाज तट से कुछ दूर ही रह कर चलने लगे और शीघ्र ही सैन जुआन नदी के मुहाने तक जहाज पहुँचे जहाँ तक पहिली यात्रा की जा चुकी थी। यहाँ पर पहुँच कर यह निश्चय किया गया कि रुइज़ एक जहाज ले कर दक्षिण की ओर जाकर तट की स्थिति का पता लगावे और अलमेगरो दूसरे जहाज पर पानामा लौट जाय और कुछ नए आदमियों को भरती कर लावे तथा इतने समय तक पिज़ारों सैन जुआन के मुहाने के समीप ठहर कर भीतरी भाग का पता लगावे। इसी समय समीप के एक गाँव पर धावा बोल कर कुछ सोना पाया जा सका था। लोगों को भरती करने के लिए उत्साहित करने को अलमेगरो सोने को साथ लेता गया।

रुइज एक जहाज पर दक्षिण की ओर रवाना हुआ। मार्ग में गैलो द्वीप पार कर लेने पर उसे कितनी वस्तुओं को देख कर

विस्मय हुआ जो एक सभ्य देश में ही हो सकती थी। सबसे आश्चर्यजनक उसे एक बड़ी नाव दिखाई पड़ी जो पाल तानकर चल रही थी। पाल रुई के कपड़े का बना था। उसने नाव पर के व्यक्तियों को बारीक बुना हुआ ऊनी वस्त्र पहने देखा जिस पर फूल और पत्तियों की चित्रकारी की गई थी और वे बढ़िया रंग में रँगे थे। उनमें से कुछ को रुइज़ ने अपने जहाज पर बैठा लिया। उन लोगों ने बतलाया कि उनकी नाव दक्षिण के एक तम्बेज़ नामक नगर से आ रही है। उन लोगों के शरीर पर सोने के बहुमूल्य आभूषणों को देखकर स्पेनवालों के हृदय में एक प्रकार की गुदगुदी पैदा हुई। इन लोगों को देख कर जान पड़ता था कि ये बहुत अधिक सभ्य हैं।

जब तक अलमेगरो और रुइज़ न लौटे तब तक पिज़ारो स्थलखंड में प्रविष्ट कर अन्वेषण-कार्य में संलग्न रहा परन्तु इसमें बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा था। वहाँ के निवासी बराबर आक्रमण करने के लिए तैयार रहते थे। एक बार नदी के ऊपरी भाग में नाव पर यात्रा करते हुए १४ स्पेनवासियों को वहाँ के मूलवासियों ने मार डाला। उस समय के पश्चात् जब रुइज दूर तक दक्षिण की ओर तट के अन्वेषण का शुभ संवाद लेकर पिज़ारो के समीप पहुँचा तो उसके कुछ ही बाद अलमेगरो भी ८० नए यात्रियों को लेकर आ पहुँचा।

इस प्रकार दोनों जहाजों के आने पर फिर दक्षिण की ओर यात्रा प्रारम्भ की गई परन्तु यात्रा प्रारम्भ करते ही तूफान का

सामना करना पड़ा और उससे रक्षा पाने के लिए एक द्वीप में पन्द्रह दिन तक जहाज़ पड़े रहे। तूफ़ान शान्त होने पर फिर दक्षिण की ओर यात्रा प्रारम्भ हुई। तट की अवस्था पहले से बहुत अच्छी मिलने लगी और बोए हुए खेत मिलने लगे जिससे पता चला कि किसी सभ्य जाति का वहाँ निवास है। परन्तु जब जब तट पर उतरने का प्रयत्न किया गया तब तब उन स्थानों के मूल निवासियों ने आक्रमण करना प्रारम्भ किया। इन आक्रमणों से तंग आकर पिज़ारो ने सोचा कि अपनी शक्ति और अधिक प्रबल किए बिना आगे बढ़ना निरर्थक है। अतएव उसने स्वयं गैलो द्वीप पर ठहर कर अलमेगरो को एक बार फिर नए आदमियों को लाने के लिए भेजा।

जब अलमेगरो पानामा पहुँचा तो पिज़ारो के साथियों का हाल सुनकर वहाँ के शासक ने सहायता भेजने के स्थान पर पिज़ारो को लौटने की आज्ञा देकर एक जहाज़ भेजा। इस समय पिज़ारो के साथियों में असन्तोष फैल रहा था और वे लौटने पर उतारू थे। शासक लौटने की आज्ञा सुनकर ही वे प्रसन्न हो उठे और लौटने को तैयार हुए परन्तु इस अवसर पर पिज़ारो ने दृढ़ता से काम लिया और तलवार से एक लकीर खींचकर कहा कि "भाइयो, इस ओर सब प्रकार के संकट हैं, आँधी तूफान आदि सब कुछ है और उस ओर सुख है परन्तु साथ ही इधर पेरू का धनागार है और उधर पानामा की दरिद्रता है। जिनके हृदय में वीरता का कुछ भी अंश शेष हो वे लकीर के इस ओर आ जायँ।" इतना

कहकर वह लकीर के इस ओर चला आया। उसके साथ ही रुइज और १२ अन्य व्यक्ति आए। शेष सब लोग जहाज पर पनामा लौट गए। रुइज भी इन लोगों के साथ पानामा लौट गया। जिससे अलमेगरो के साथ वह शासक को प्रसन्न कर दुबारा जहाज पर आदमियों को लाने की आज्ञा प्राप्त कर सके। बड़ी कठिनाई से ७ मास के पश्चात् शासक द्वारा आज्ञा मिल सकी और कुछ आदमियों के साथ जहाज पिज़ारो के पास पहुँचा। परन्तु इतनी अवधि तक पिज़ारो को जिन संकटों का सामना करना पड़ा उनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

जिस समय पानामा के शासक की आज्ञा लेकर उसके आदमी पिज़ारो को लौटाने के लिए गए थे उस समय पिज़ारो के कुछ आदमियों के साथ रह जाने पर खाने का सब कुछ पदार्थ साथ ही लेते गये थे। अतएव भूखों मरने की नौबत आनेपर वे एक दूसरे द्वीप में चले गए थे जहाँ उन्हें कुछ खाने को मिल सकता था। वहाँ पर आँधी पानी के कारण उन्हें बहुत कष्ट का अनुभव करना पड़ा। अन्त में जब सहायता आ पहुँची तो पिज़ारो ने तुरन्त दक्षिण की ओर यात्रा प्रारम्भ की। इस यात्रा में मनुष्य थोड़े ही थे। इस कारण पिज़ारो ने तट पर कहीं भी उतरने का साहस नहीं किया। उसे आक्रमण से बचकर शीघ्र ही पेरू देश में पहुँचने की उत्कंठा थी। जहाज पर से भूखंड के भीतर पूर्व की ओर स्थित विशाल ऐंडीज़ पर्वत के दर्शन हो रहे थे और हिममय चोटियाँ दिखाई पड़ रही थीं।

२० दिन तक इस प्रकार यात्रा करने के पश्चात् जहाज भूमध्य रेखा पार कर ग्वायाकिल खाड़ी में पहुँच सका । इसी खाड़ी के दक्षिणी तट पर तम्बेज़ नगर था जहाँ की नाव को रुइज़ ने पहले देखा था और कुछ व्यक्तियों को अपने जहाज पर चढ़ा लिया था। वे इस यात्रा में साथ थे। इसी नगर के सामने एक द्वीप के समीप जहाज ठहराया गया। तम्बेज़-निवासियों ने मित्रता का व्यवहार किया और भोजन की सामग्री देकर यात्रियों की सहायता की ।

तम्बेज़ से आगे दक्षिण जाकर पिज़ारो ने एक बहुत ही सभ्य जाति का देश देखा और प्रत्येक स्थान पर विस्मयजनक बस्ती देखकर पहले पहल अनुभव किया कि पेरू के इंका साम्राज्य का वैभव उनकी कल्पना से कहीं अधिक बढ़चढ़कर है। तट पर प्रत्येक स्थान पर निवासियों ने नवागन्तुकों से मित्र भाव प्रदर्शित किया और खाने-पीने का सामान प्रस्तुत किया। इस प्रकार पेरू देश का साक्षात् दर्शन कर ब्लैको अंतरीप होते हुए वे उस स्थान तक पहुँच सके जहाँ आजकल ट्रूक्सिलो नगर बसा हुआ है। परन्तु पिज़ारो ने अपनी थोड़ी शक्ति का अनुभव कर कहीं भी विरोध-भाव नहीं प्रदर्शित किया। इस प्रकार दूसरी यात्रा समाप्त कर पिज़ारो पेरू के अतुल वैभव को देख स्पेन पहुँचा और वहाँ सम्राट से इस प्रदेश के वैभव का पूर्ण विवरण सुनाया। सम्राट ने उसे नए खोजे हुए देश का शासक बनाया और धन की सहायता भी दी परन्तु वह पर्याप्त नहीं थी। सौभाग्यवश पिजारो मेक्सिको के विजेता कार्टीज़ से मिला और बहुत साधन प्राप्त कर सका।

इस प्रकार तैयारी कर सन् १५३१ ई० में पिजारो ने ३ जहाज पर १८० पुरुष और ३० घोड़ों के साथ तीसरी यात्रा प्रारम्भ की। अलमेगरो पानामा में ही रह गया जिससे कुछ और आदमियों को जुटा कर पीछे आ सके। भूमध्य रेखा के समीप पहुँच कर सारी सेना तट पर उतर गई और किनारे किनारे भूमि पर दूर तक यात्रा की गई। मार्ग में कितने ही स्थान लूटे गए जिनमें बहुत सा धन हाथ लगा। उसे पानामा भेजने पर बहुत से आदमी बुलाए जा सके। इन नए आदमियों से शक्ति बढ़ जाने पर पिजारो ने किनारे से पेरू प्रदेश के अंदर उसकी राजधानी तक की यात्रा प्रारंभ की। यह यात्रा ग्वायाकिल नदी के मुहाने के समीप से मई, १५३२ ई० में प्रारम्भ की गई। पिज़ारो के हृदय में यह इच्छा थी कि जिस प्रकार कार्टीज ने मांटिजूमा को बन्दी बनाकर अपना अधिकार फैलाया था उसी प्रकार पेरू के इंका सम्राट को भी बन्दी बनाकर पेरू पर अधिकार प्राप्त किया जाय। इसके लिए उसने इंका साम्राज्य में प्रवेश करने का विचार किया।

इंका सम्राट एटाहुआल्पा ने पिजारो के आने का संवाद सुन कर उसके पास बहुमूल्य भेंट देकर अपने राजदूतों को भेजा और कैक्सेमल्का नगर में उससे मिलने की इच्छा प्रकट की। कैक्सेमल्का नगर ऐंडीज पर्वत के दूसरी ओर बसा हुआ था। जब पिज़ारो उस नगर में पहुँचा तो सम्राट ३०००० मनुष्यों की भीड़ के साथ बड़े ठाट-बाट से मिलने चला। इतने अधिक मनुष्यों के बीच सम्राट को देख स्पेनवाले पहले भयभीत हुए परन्तु ये लोग

युद्ध करने नहीं जा रहे थे और स्पेनवाले अपने तोप-गोलों से सुसज्जित थे। इस कारण जब सम्राट दिखाई पड़ा तो तोपें दगने लगीं, चारों ओर स्पेनवालों ने हजारों मनुष्यों को मारना-काटना प्रारम्भ किया और सम्राट बन्दी बना लिया गया।

सम्राट ने छुटकारा पाने के लिए उस कमरे को अपना हाथ पहुँचने की ऊँचाई तक सोने से भर देने का विश्वास दिलाया जिसमें वह बन्दी किया गया था। छुटकारा मिलते ही उसने अपना वचन पूरा किया और स्पेनवालों को इस प्रकार करोड़ों रुपए के मूल्य का सोना मिल सका। परन्तु वे इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने सम्राट को अपराधी बताकर जीवित जला देने का दंड निश्चित किया परन्तु पीछे जलाया न जाकर उसे फाँसी दी गई। इस प्रकार पेरू को पराजित कर पिजारो ने इस पर अपना आधिपत्य जमाया और जनवरी १५३५ ई० में लीमा नामक नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया।

इसी समय पिजारो का साझीदार अलमेगरो चिली राज्य को विजित करने का प्रयत्न कर रहा था। परन्तु चिली पेरू की अपेक्षा विशेष दुर्गम देश था। उसमें पहुँचने के लिए ऐंडीज पर्वत को पार करते हुए उसके सैनिकों को बहुत अधिक कष्ट का सामना करना पड़ा। कितने ही शीत के मारे बर्फ में वहीं गल गए। वहाँ के निवासी भी अधिक लड़ाकू थे जिन्होंने अपने बाणों की वर्षा से कितने ही स्पेनवासियों का प्राणान्त किया। इसी समय पेरू राज्य-निवासियों ने अपनी पुरानी सत्ता स्थापित करने के लिए

विप्लव खड़ा किया था। इस का सन्देश पाते ही अलमेगरो पेरू की पुरानी राजधानी कुजको नगर पहुँचा।

उस समय कुजको का आधा भाग तो पेरूवालों के अधिकार में आ गया था और आधे की फ्रांसिस्को पिजारो के दो बन्धु फर्डिनंड और गोंजेलो पिजारो रक्षा कर रहे थे। अलमेगरो ने नगर से विप्लवकारियों को भगा दिया परन्तु पिजारो ने उसको पहले की लूटों में पूरा भाग नहीं दिया था और उसको कुछ अधिकार भी नहीं मिला था इस कारण उसने उसके दोनों भाइयों को बंदीकर नगरपर अधिकार जमा लिया। इस प्रकार स्पेनवालों में परस्पर युद्ध प्रारम्भ हुआ। कुछ दिनों तक अलमेगरो के विजयी रहने पर फ्रांसिस्को पिजारो ने आक्रमण कर उसे पराजित किया और अलमेगरो बन्दी होकर कुछ समय पश्चात् मार डाला गया। इसी प्रकार कितने ही उपद्रवों के खड़े होते रहने और स्पेनवालों में परस्पर युद्ध के पश्चात् पेरू अन्तिम रूप से स्पेनवालों के अधिकार में आ सका जिसके वर्णन के लिए यहाँ पर स्थान नहीं है।

पेरू विजय कर लेने पर यद्यपि स्पेनवालों को अपार धन प्राप्त हुआ था तथापि धन-लिप्सा शान्त न हुई थी और उन्होंने समीप के अन्य स्थानों की ओर धावा बोलना प्रारम्भ कर दिया था। उन्हीं में सेपियरा डीबालडिविया नाम के एक व्यक्ति ने चिली पर आक्रमण कर उस पर अपना अधिकार जमा कर सैंटियागो नगर बसाया था।

ऐंडीज पर्वत से पूर्व की ओर विस्तृत मैदान की ओर बढ़ने में एक यात्रा की कहानी बड़ी विचित्र है। यह फ्रांसिस्को पिजारो के

भाई गोंजेलो पिजारो द्वारा की गई थी। जब पिजारो ने अपने को पेरू समाज्य का शासक बनाया तो उसके कुछ भागों में अपने भाइयों को शासक बना दिया। उन में गोंजेलो पिजारो कीटो नगर का शासक था। उसने वहाँ के निवासियों से सुना कि पूर्व की ओर विस्तृत प्रदेश हैं जहाँ मसाले आदि मिल सकते हैं। गोंजेलो ने इस प्रदेश का ज्ञान प्राप्त करने के लिए सन् १५४० ई० में ३५० स्पेन निवासी और ४००० वहाँ के मूल वासियों को साथ लेकर यात्रा प्रारम्भ की। यात्रा प्रारम्भ करते ही संकट का सामना हुआ। एक भयंकर भूडोल आने के कारण पर्वत हिल गए और आँधी-पानी तथा बिजली का प्रकोप हुआ। पहाड़ी घाटियाँ पानी से भर गईं। इस कारण स्थिति संकटपूर्ण होगई परन्तु गोंजेलो ने लौटने का नाम न लिया।

विशाल ऐंडीज़ पर्वत को पार करने में इस प्रकार की स्थिति उपस्थित होने पर कितने ही मनुष्यों के प्राण चले जाने पर जब मैदान सामने आया तो यात्रियों को बड़ी प्रसन्नता हुई परन्तु यहाँ भी दुख का अन्त न हुआ। निरन्तर दो मास तक वर्षा के कारण कपड़े सुखाने का भी अवसर नहीं मिलता था। साथ ही मैदान में जहाँ तहाँ बसे हुए निवासियों वा जंगलों से कुछ भी खाने को नहीं मिलता था। मार्ग भी बड़ा बीहड़ था और घने जंगल काट कर आगे बढ़ना पड़ता था। किसी प्रकार एक नदी पाकर उसके तट पर यात्रा प्रारम्भ की गई। यह नदी दक्षिणी अमेरिका के विस्तृत क्षेत्र में बहकर अटलांटिक महासागर में गिरनेवाली प्रसिद्ध

नदी आमेज़न की सहायक नदी थी। यात्रियों ने भोजन पाने की आशा से एक डोंगी बनाकर उसपर पचास आदमियों को ओरेलोनो नाम के एक व्यक्ति की अध्यक्षता में कुछ दूर आगे जाने के लिए भेजा।

जब ओरेलोनो डोंगी पर चलने लगा तो नदी के जल का वेग कुछ अधिक मिला और वे आगे बढ़ने लगे। मार्ग में कहीं खाद्य पदार्थ मिलने की कुछ आशा नहीं दिखाई पड़ी और साथ ही तेज़ धारा के कारण लौटने में कुछ कठिनाई भी प्रतीत हुई, इस कारण उसने नदी के प्रवाह के साथ ही आगे बढ़ने का निश्चय किया। सहायक नदी के संगम पर आमेज़न नदी मिली। उसके मार्ग से इन लोगों ने हजारों मील का अज्ञात मार्ग पार किया। किसी प्रकार कभी कुछ आहार कर और कभी भूखे रहकर इनलोगों में से कुछ समुद्र तट पर पहुँच सके। वहाँ से एक स्पेनवालों के बसाए उपनिवेश तक यात्रा की जा सकी। वहाँ पर एक जहाज द्वारा यात्रा कर ओरेलोनो अपने कुछ साथियों के साथ स्पेन पहुँच सका।

ओरेलोनो अपने शेष जिन साथियों को भोजन लाने के निमित्त डोंगी पाकर आगे चला गया था उन लोगों का एक मात्र आधार एक डोंगी ही था। उस पर भेजे हुए ओरेलोनो को ढूँढ़ने की आशा से वे लोग सहायक नदी और आमेजन नदी के संगम से भी ५० मील दूर तक गए परन्तु वह न मिल सका। किसी प्रकार एक आदमी से ज्ञात हुआ कि वह नदी के मार्ग भाग गया है तो गोंज़ेलो के साथियों को पीछे लौटने के सिवा कोई चारा नहीं था।

परन्तु १२०० मील की यह लौटानी यात्रा पहले से भी विकट थी। खाने को कुछ भी न मिल सकने से यात्रियों को जंगली पेड़ पौधों की जड़-मूल के अतिरिक्त अपने घोड़ों, कुत्तों और ज़हरीले साँपों और अन्त में चमड़े की पेटी तथा ज़ीन को खाकर दिन काटने के लिए विवश होना पड़ा। इस प्रकार के भीषण संकट में यात्रा कर ४००० मूल निवासियों और २१० स्पेन वासियों का मार्ग में ही प्राणान्त हो गया और दो बर्ष की यात्रा के पश्चात् गोंजेलो के साथ केवल ८० व्यक्ति कीटो लौट सके, सो भी ऐसी कृश काय और नंग-धड़ंग अवस्था में कि उनका रूप पिशाच सा दिखाई पड़ता था।

१४--उत्तरी महासागर में एशिया का मार्ग



जिस समय योरप में एशिया के पूर्वी देशों तक सीधे जलमार्ग से पुर्तगाल देशवासी दक्षिण अफ्रिका महाद्वीप का चक्कर लगाकर पूर्व की ओर चलकर और स्पेनवाले मध्य अटलांटिक महासागर में पश्चिम की ओर यात्रा कर पहुँचने का उद्योग कर रहे थे उन दिनों उत्तरी महासागर में पूर्व वा पश्चिम की ओर चलकर उन अभिलषित देशों तक पहुँचने का प्रयत्न किया जा सकता था। इंग्लैण्ड ने इसी क्षेत्र में उत्तर-पश्चिम और

उत्तर-पूर्व की ओर जहाज़ों को दौड़ाकर एशियाई देशों में पहुँचने का प्रयत्न किया। उन यात्राओं में पहला प्रयत्न सन् १४९७ ई० में जोन कैबट नाम के एक व्यक्ति द्वारा किया गया था।

जोन कैबट इटली देश का रहनेवाला था और वेनिस से चलकर सन् १४९० ई० में इंग्लैण्ड के ब्रिस्टल नगर में बस गया था। जब कोलम्बस ने अमेरिका महाद्वीप का अन्वेषण किया तो कैबट ने यह विचार किया कि उत्तरी अटलांटिक महासागर में उत्तर-पश्चिम की ओर यात्रा कर एशिया महाद्वीप तक पहुँचना सम्भव होगा। इसलिए उसने इंग्लैण्ड के तत्कालीन राजा सप्तम हेनरी से इस यात्रा के लिए आज्ञा प्राप्त की और १८ व्यक्तियों के साथ एक छोटे जहाज पर सन् १४९७ ई० में यात्रा प्रारम्भ की। उत्तरी अटलांटिक महासागर को पार कर उत्तरी अमेरिका के उत्तरी लेब्रेडर तट तक जहाज पहुँच सका। तट की कुछ मील तक यात्रा की जा सकी परन्तु खाद्य पदार्थ की कमी और थोड़े मनुष्यों के कारण जहाज इंगलैण्ड लौट गया। कैबट का विश्वास था कि वह एशिया महाद्वीप के समीप पहुँच गया है।

सम्राट ने कैबट द्वारा एशिया पहुँच जाने का संवाद सुनकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और उसे पुरस्कृत किया। इसके कुछ समय पश्चात् ही दूसरी यात्रा की व्यवस्था की गई। अब की बार कैबट ने व्यापार की बहुत सी सामग्री लेकर कई जहाजों के साथ यात्रा प्रारम्भ की। उसको आशा थी कि मार्कोपोलो द्वारा वर्णित सिपैंगो वा जापान द्वीप उसे मिल सकेगा, ज़हाँ से व्यापार कर

उसे बड़ा ही लाभ होगा। इस अभिलाषा से सन् १४९८ ई० के मई मास में उसने यात्रा प्रारम्भ की। परन्तु इस यात्रा का विशेष विवरण नहीं मिलता। अनुमानतः इस यात्रा में भी वह उत्तरी अमेरिका के तट तक लैब्रेडर के समीप पहुँचा। वहाँ से जापान तक पहुँचने की आशा से उसने दक्षिण की ओर यात्रा की क्योंकि उसका अनुमान था कि वह द्वीप उत्तर की अपेक्षा अधिक उष्ण अक्षांश में ही होगा। कई दिन तक यात्रा की गई परन्तु अभिलषित भू-खंड नहीं दिखाई पड़ा। इस कारण कैबट को यह अनुमान हुआ कि सम्भवतः यह एशिया का तट नहीं है, कोई दूसरा ही भूखंड है, अतएव निराश होकर वह लौट गया। इस असफलता के पश्चात् लोग इसको भूल गए।

जोन कैबट के तीन पुत्र थे जिनमें दूसरे पुत्र का नाम सेबेस्टियन कैबट था। अपने पिता की दूसरी यात्रा में इसने भी साथ ही यात्रा की थी। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् इसने स्वयं उत्तर-पश्चिम की ओर ही एशिया तक पहुँचने की अभिलाषा से यात्रा की परन्तु कुछ फल न निकला। इसके पश्चात् कुछ अन्य यात्री भी समय समय पर उस ओर साधारण यात्राएँ करते रहे परन्तु उनका कोई परिणाम न निकला।

जब सेबेस्टियन कैबट ने उत्तर-पश्चिम की ओर से यात्रा कर सकने में सफलता की आशा न देखी तो उसके मन में विश्वास हुआ कि उत्तर-पूर्व की ओर चल कर योरप और एशिया के उत्तर ही उत्तर चीन, जापान और भारत तक जहाजों का पहुँचना सम्भव

होगा। उन दिनों लोगों को इस बात का ज्ञान नहीं था कि उत्तरी शीत कटिबन्ध के विस्तार के कारण उत्तरी समुद्र में बर्फ के समुद्र में जम जाने, बड़े बड़े पर्वताकार आइस-बर्ग के बहते रहने और अधिक सर्दी के कारण यात्रा सुगम कार्य नहीं है। फलतः उत्तर-पूर्व के मार्ग से एशिया के पूर्वी देशों तक पहुँचने और व्यापार-संबंध स्थापित करने के लिए अज्ञात देशों का पता लगाने के उद्देश्य से सेबेस्टियन की अध्यक्षता में एक व्यापारिक कम्पनी की स्थापना हुई। इसकी ओर से सन् १५५३ ई० में सर विलोबाई और रिचर्ड चांसलर दो व्यक्तियों की अध्यक्षता में तीन जहाजों ने यात्रा प्रारम्भ की।

कुछ दूर यात्रा कर तीनों जहाज नार्वे के तट के समीप स्थित लोफोडेन द्वीप तक सकुशल पहुँच सके परन्तु इसके पश्चात् ही संकट का सामना हुआ। बड़े ज़ोरों का तूफान उठने के कारण जहाज पृथक पृथक हो गए। विलोबाई के जहाज के साथ एक जहाज और रह सका परन्तु चांसलर का जहाज बिल्कुल पृथक हो गया। विलोबाई दोनों जहाजों के साथ बहते हुए दूर चला गया। दोनों कप्तानों ने एक स्थान निश्चित किया था कि किसी कारण जहाज पृथक हो जाने पर फिर वहीं मिल सकें परन्तु अनजाने ही उस स्थान से विलोबाई के जहाज आगे बढ़ गए और सम्भवतः नोवाज़ेंबला द्वीप तक पहुँचे। वहाँ से फिर पीछे पश्चिम की ओर चलकर श्वेत सागर का द्वार पार कर लपलैंड के तट पर पहुँचे। यहाँ पर पहुँचकर विलोबाई ने सब ओर आदमियों की बस्ती का

पता लगाने के लिए भेजा परन्तु कहीं भी मनुष्य का चिह्न नहीं दिखाई पड़ा। विवश होकर खाने-पीने के अभाव और कड़ाके की सर्दी का सामना करते हुए जाड़े का मौसिम वहीं पर काटना पड़ा। इस संकटपूर्ण स्थिति में सभी यात्रियों के साथ विलोबाई की वहीं पर मृत्यु हो गई। कुछ समय के पश्चात् वहाँ उनके जहाज का चिह्न मिल सका।

सौभाग्यवश चांसलर को विलोबाई और उसके साथियों की भाँति मृत्यु का सामना न करना पड़ा। उसका जहाज मिलने के स्थान पर पहुँचा। वहाँ पर उसने कई दिन तक अन्य दो जहाज़ों के लिए प्रतीक्षा की परन्तु अधिक समय तक वहाँ ठहरना संकट-पूर्ण समझ आगे की ओर बढ़ा। मार्ग में उसे कुछ यात्री मिले जिन्होंने उसे आगे बढ़ने पर संकटआने का भय दिखलाया, परन्तु चांसलर ने भय छोड़कर आगे चलते जाने का निश्चय किया। उसके साथ के मल्लाहों ने भी निर्भयता दिखलाई। फलतः ऐसा स्थान आ सका जहाँ उन लोगों को दिन रात दिन ही हुआ दिखाई पड़ने लगा और बराबर सूर्य का प्रकाश दिखाई पड़ता रहा। आगे बढ़कर वे लोग श्वेत सागर में पहुँच सके। वहाँ समुद्र-तट पर उन्हें कुछ मनुष्य दिखाई पड़े। पहले तो जहाज देखकर वे भय के कारण भागने लगे, परन्तु पीछे मित्र-भाव प्रकट करने और दिलासा देने पर समीप आ सके और खाद्य-पदार्थ देकर सहायता की। चांसलर ने उनके साथ कुछ व्यापारिक वस्तुओं के लेन-देन का प्रयत्न किया परन्तु उन निवासियों ने बतलाया कि वे अपने सम्राट

की आज्ञा बिना किसी विदेशी से व्यापार न करने के लिए विवश हैं, साथ ही अंग्रेज यात्रियों के पास व्यापारिक वस्तुएँ ऐसी थीं जिन्हें प्राप्त करने का लोभ भी वे संवरण नहीं कर सकते थे। इस कारण सम्राट के पास व्यापार की आज्ञा प्राप्त करने के लिए दूत भेजने का निश्चय किया गया। उनका सम्राट मास्को नगर में रहता था और देश का नाम रूस था।

फलतः व्यापार की आज्ञा प्राप्त करने के लिए दूत भेजा गया, परन्तु उसके लौटने में बड़ी देर हुई, इस कारण चांसलर ने अपने साथियों के साथ स्वयं मास्को तक यात्रा करने का निश्चय किया। मार्ग ही में दूत भी मिल गया। दूत द्वारा सम्राट ने यह आज्ञा भेजी थी कि व्यापारी मास्को नगर आवें। अतएव मास्को पहुँचने का और भी दृढ़ निश्चय हुआ। मार्ग में सर्वत्र बर्फ जमी हुई थी, इस कारण किसी गाड़ी के काम न दे सकने के कारण बर्फ में चल सकनेवाली बेपहिए की स्लेज गाड़ी पर यात्रा की गई। किसी प्रकार १५०० मील की यात्रा कर मास्को नगर दिखाई पड़ा। सम्राट ने यात्रियों का स्वागत किया और अपने देश के साथ व्यापार करने का अधिकार दिया।

इस प्रकार व्यापार की आज्ञा मिल जाने पर चांसलर इंग्लैंड लौट आया। जब उसने व्यापार की आज्ञा प्राप्त होने और रूस देश से लाभप्रद व्यापार हो सकने की लोगों को सूचना दी तो शीघ्र ही उसे दुबारा व्यापारियों ने व्यापारिक-सम्बंध दृढ़ करने के लिए सन् १५५५ ई० में मास्को भेजा। यह दूसरी यात्रा सफल रही

और रूस देश में व्यापारिक केन्द्र स्थापित किए जा सके। सन् १५५६ ई० में चांसलर ने चार जहाजों के साथ रूस का राजदूत साथ लेकर लौटानी यात्रा की परन्तु मार्ग में जहाज नष्ट-भ्रष्ट हो गए और स्काटलैंड के निकट चांसलर समुद्र में डूब गया। किसी प्रकार राजदूत इंग्लैंड तक पहुँच सका और रूस के साथ व्यापार-सम्बंध स्थापित हो गया।

इन यात्राओं के पश्चात् भी कुछ यात्राएं एशियाई देशों तक पहुँचने के लिए की गईं, परन्तु रूस के व्यापार में व्यापारियों को अर्थलाभ होने के कारण आगे के समुद्र-मार्ग का अन्वेषण लोगों को आकर्षित न कर सका। साथ ही बर्फ और शीत के कारण मार्ग दुर्गम भी था, इस कारण किसी प्रकार नोवाज़ेम्बला के कुछ पूर्व तक ही दो एक यात्री बढ़ने का साहस कर सके।

जब उत्तर-पूर्व की ओर से एशिया के पूर्वी देशों तक जल-मार्ग का पता लगाने में सफलता न दिखाई पड़ी तो इंग्लैंडवालों का ध्यान उत्तर-पश्चिम की ओर के मार्ग का पता लगाने की ओर गया। इस ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करने में हम्फ्रे गिल्बर्ट का नाम उल्लेखनीय है। गिल्बर्ट का विश्वास था कि उत्तर-पश्चिम की ओर से एशिया तक समुद्र-मार्ग अवश्य ही होगा। उसने अपने इसी विश्वास की परीक्षा के लिए मार्टिन फ्राबिशर नाम के एक नाविक को यात्रा करने के लिए प्रोत्साहित किया। इस यात्रा के लिए इंग्लैंड की तत्कालीन सम्राज्ञी महाराणी एलिज़ाबेथ ने फ्राबिशर को राजाज्ञा प्रदान की। फलतः ७ जून

१५७६ ई० को एक छोटी नौका तथा गैब्रियल और मिकेल नाम के दो जहाजों पर ३५ आदमियों के साथ यात्रा प्रारम्भ हुई।

मार्ग में तूफान उठने से छोटी नौका तो लापता हो गई और मिकेल पर के मल्लाह चुपके से अपना जहाज लौटा ले गए और यह प्रसिद्ध किया कि फ्राबिशर गैब्रियल जहाज के साथ कहीं बह गया। इस कारण फ्राबिशर गैब्रियल जहाज पर ही आगे बढ़ने लगा। ग्रीनलैंड के दक्षिणी छोर तक जहाज पहुँच सका। वहाँ से लेब्रेडर तट तक यात्रा की गई। वहाँ पर फ्राबिशर ने अपने जहाज के समीप ही एक बहुत बड़े आइस बर्ग को दो टुकड़े में फटते देखा। उसके फटने से ऐसा शब्द हुआ मानो कोई पर्वत ही टूट पड़ा हो। यहां पर बर्फ की अधिकता से जहाज किनारे नहीं लग सका। इस कारण उत्तर की ओर यात्रा की गई। कुछ दूर जाने पर फ्राबिशर ने देखा कि एक स्थान पर समुद्र स्थल-खंड के अंदर दूर तक फैला हुआ है। इसे देख उसने अनुमान किया कि यह अवश्य ही अटलांटिक महासागर को एशिया के पूर्व में विस्तृत महासागर से मिलाने वाली जल-प्रणाली है।

इस जल-प्रणाली को देख कर फ्राबिशर को बड़ी ही प्रसन्नता हुई और उसने मन में विचारा कि जिस प्रकार दक्षिणी अमेरिका के दक्षिणी छोर के समीप जल-प्रणाली का पता लगा कर मैगेलन ने उसे अपने नाम से प्रसिद्ध किया था उसी प्रकार उत्तरी अमेरिका के उत्तरी छोर पर जल-प्रणाली का पता लगाने के कारण उसका नाम अमर हो सकेगा। इस विचार से उसने तुरंत ही उसे

अपने नाम पर फ्राबिशर जल-प्रणाली नाम प्रसिद्ध किया । यह नाम अब भी उत्तरी अमेरिका के मानचित्र में देखा जा सकता है। परन्तु यह अटलांटिक महासागर को प्रशान्त महासागर से मिलाने वाली कोई जल-प्रणाली नहीं है प्रत्युत उत्तरी सागर में स्थित बैफिन द्वीप में एक खाड़ी है जो स्थल-खंड में कुछ दूर तक फैली है।

इस खाड़ी के दोनों ओर स्थल-खंड को देख कर फ्राबिशर ने कल्पना की थी कि एक ओर एशिया महाद्वीप का तट है और दूसरी ओर अमेरिका का तट है। इस प्रसन्नता में भीतर की ओर वह १५० मील तक चलता गया। एक स्थान पर धुआँ दिखाई पड़ने पर जहाज ठहराया गया। वहाँ कुछ एस्किमो जाति के आदमी मिले। उनसे सील मछली और भालू का चमड़ा लेकर परिवर्तन में घंटी, दर्पण और कुछ खिलौने दिए गए। दुर्भाग्य वश ५ अंग्रेज़ यात्री किनारे उतरने पर एस्किमो लोगों द्वारा पकड़ लिए गए और उनका फिर पता न चला। फ्राबिशर ने भी वहाँ के एक मूल निवासी को पकड़ कर जहाज पर बैठा लिया। उसके जहाज की अवस्था अच्छी नहीं थी। इस कारण आगे न बढ़ कर उसने लौटने का निश्चय किया। जहाज पर लाया हुआ मूल निवासी इंग्लैंड आने के कुछ समय पश्चात् ही मर गया।

फ्राबिशर जिस समय इंग्लैंड पहुँचा उस समय लोगों ने अभिलषित जल-प्रणाली का पता पाकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की परन्तु इसके साथ ही प्रसन्नता बढ़ानेवाली एक और बात थी।

फ्राबिशर लौटते समय अपने साथ कुछ काले पत्थर के टुकड़े, जो फ्राबिशर खाड़ी के तट पर मिले थे, लेता आया था। संयोग-वश उन टुकड़ों में सोना मिश्रित पाया गया। अब तो लोगों के हर्ष का ठिकाना ही नहीं रहा। लोगों ने समझा कि सोने का भंडार अब हाथ में आ गया। फलतः शीघ्र ही फ्राबिशर के साथ तीन जहाज सन् १५७७ के मई मास में भेजे गए। इस दूसरी यात्रा में पहले के दो जहाजों के साथ 'एड' नाम का तीसरा जहाज था। यह यात्रा पहले ही मार्ग से सीधे फ्राबिशर की खाड़ी तक की गई और काले पत्थरों को प्रचुर मात्रा में एकत्रित किया गया। तूफान के कारण तीनों जहाज पृथक पृथक हो गए परन्तु भिन्न भिन्न समय पर तीनों इंग्लैंड लौट सके। इस बार भी फ्राबिशर की बड़ी प्रशंसा की गई।

इस दूसरी यात्रा के पश्चात् सन् १५७८ ई० के मई मास में १५ जहाजों के साथ तीसरी यात्रा की गई। जहाज फ्राबिशर खाड़ी के द्वार तक पहुँच सके परन्तु तूफान के कारण वे दक्षिण बह कर हडसन की खाड़ी के समीप पहुँच गए। किसी प्रकार फ्राबिशर की खाड़ी में फिर प्रवेश किया गया, परन्तु कई जहाजों को तूफान ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। बहुत से पत्थर के काले टुकड़े एकत्रित किए गए परन्तु जाड़े का मौसिम आ पहुँचने से जहाज इंग्लैंड को लौट पड़े। दुर्भाग्यवश जब यह देखा गया कि पत्थर के टुकड़ों में सोना नहीं पाया जाता और वे व्यर्थ हैं तो फ्राबिशर की महत्ता जाती रही और लोग उसे भूल गए।

फ्राबिशर की यात्राओं से उत्तर-पश्चिम के मार्ग, एशिया तक पहुँचने का मार्ग ज्ञात न हो सकने से लोग हतोत्साह अवश्य हुए थे, परन्तु अब भी कुछ लोगों का विश्वास था कि ऐसा कोई मार्ग अवश्य है। इस कारण अन्य कई व्यक्तियों ने इस मार्ग को ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न किया। उन यात्रियों में डेविस, हडसन और बैफिन का नाम बड़ा प्रसिद्ध है।

डेविस ने सन् १५८५ ई० में विलियम सैंडरसन नाम के एक व्यापारी के व्यय से दो जहाजों को लेकर यात्रा प्रारम्भ की। ग्रीनलैंड का दक्षिणी छोर पार कर डेविस उसके पश्चिमी किनारे पर पहुँचा। इस किनारे पर कुछ दूर तक तो भूमि नहीं दिखाई पड़ी परन्तु ६४° उत्तरी अक्षांश पर पहुँचने पर एक खाड़ी मिली जिसका माम गिल्बर्ट की खाड़ी रक्खा गया। यहाँ पर कुछ मनुष्य मिले, परन्तु उन्होंने जहाज देखते ही बहुत जोर से चिल्लाना प्रारम्भ किया। इसे देख उन्हें प्रसन्न करने के लिए डेविस के साथी गाने बजाने लगे। किसी प्रकार वे निकट आए और उनके साथ कुछ व्यापारिक वस्तुओं की लेन-देन हुई। इस स्थान पर कुछ हरियाली थी और बस्ती योग्य द्वीप भी दिखाई पड़ते थे। उन मनुष्यों द्वारा ज्ञात हुआ कि उत्तर और पश्चिम की ओर बड़ा समुद्र है। अतएव डेविस को आशा हुई कि इस समुद्र द्वारा एशिया पहुँचना सम्भव होगा। इस कारण उसने आगे की ओर यात्रा प्रारम्भ की। उसने उस जल-प्रणाली को पार किया जो उसके नाम पर अब भी प्रसिद्ध है।

इस जलखंड को पार कर लेने पर वह बैफिन द्वीप के तट पर पहुँचा। वहाँ उसने फ्राबिशर खाड़ी से कुछ उत्तर स्थित कम्बरलैंड खाड़ी को भूखंड के अंदर घुसा हुआ देखा। परन्तु उसने अनुमान किया कि एशिया के समुद्र में मिलने वाली यही जल-प्रणाली है। इस कारण इंग्लैंड लौटने पर जब इसका संवाद मिला तो शीघ्र ही दूसरी यात्रा की व्यवस्था हुई और १५८६ ई० में डेविस ने यात्रा प्रारम्भ की। इस बार वह ६७° उत्तरी अक्षांश तक जाकर दक्षिण चला आया और ५४° अक्षांश पर हडसन की खाड़ी का द्वार देख अभीष्ट जल-मार्ग का अनुमान किया, परन्तु दूसरे वर्ष उसने फिर तीसरी बार यात्रा की और ७२° उत्तरी अक्षांश तक उत्तर में पहुँच सका। यहां पर खुला समुद्र दिखाई पड़ा, परन्तु पश्चिम की ओर १२० मील तक यात्रा करने पर भी भूमि दिखाई न पड़ी। इस प्रकार तीन यात्राओं में सफलता न मिल सकने के कारण उसे और यात्राएँ करने के लिए किसी की सहायता न मिल सकी।

डेविस के पश्चात् उसके कार्य को हडसन ने आगे बढ़ाया। इसी प्रयत्न में इसकी मृत्यु भी बड़े मार्मिक ढंग से हुई। इस कारण इसकी यात्राओं का विशेष महत्व है। हडसन की पहली यात्रा सन् १६०७ ई० में प्रारम्भ हुई। इस यात्रा में इसने ग्रीनलैंड के पूर्वी तट से होकर उत्तर में ८०° अक्षांश पर स्पिट्ज़बर्गेन द्वीप तक यात्रा की। इतने अधिक उत्तर जाने पर उसे अनुभव हुआ कि उस ओर से समुद्र-मार्ग का मिलना असम्भव है। सन् १६०८ ई० में

इसने उत्तर-पूर्व की ओर समुद्र-मार्ग का पता लगाने के लिए नोवा जेम्बला तक यात्रा की, परन्तु आगे न बढ़ सका और यह यात्रा असफल रही। फिर एक दूसरी यात्रा में हडसन ने नोवा जेम्बला तक यात्रा की। वहाँ से वह पश्चिम की ओर चल कर उत्तरी अमेरिका के तट पर पहुँचा और दक्षिण की ओर तट पर चल कर उस नदी का अन्वेषण किया जो उसके नाम से प्रसिद्ध है और जिसके मुहाने पर आधुनिक न्यूयार्क नगर स्थित है।

सन् १६१० ई० में हडसन ने अपने जीवन की अंतिम यात्रा की। यह यात्रा उत्तर-पश्चिम की ओर समुद्र-मार्ग ढूंढ़ निकालने की आशा से की गई थी। हडसन की अध्यक्षता में डिस्कवरी नाम के जहाज पर यात्रा प्रारम्भ हुई। ग्रीनलैंड होकर डेविस जलप्रणाली पार कर हडसन आखात सम्मुख आया। इस आखात में प्रविष्ट कर हडसन ने तट का अन्वेषण प्रारम्भ किया। मार्ग में आँधी और बर्फ की कठिनाई का बराबर सामना करते रहना पड़ा। तीन महीने तक अन्वेषण करने पर बहुत से छोटे छोटे द्वीपों का ज्ञान हुआ। परन्तु अधिक विलम्ब हो जाने से जाड़े का मौसिम आ पहुँचा था और लौटना कठिन था। सर्दी के कारण जहाज बर्फ में फँस गया, इस कारण बर्फ पिघलने तक वहीं पड़े रहना पड़ा। जब जाड़ा बीतने पर बर्फ पिघलने से मार्ग निकल आया तो तुरन्त ही लौटने का निश्चय किया गया।

इस समय भोजन बहुत ही कम रह गया था जो कुछ दिनों के लिए ही पर्याप्त हो सकता था। अतएव इंग्लैण्ड लौटने तक सभी

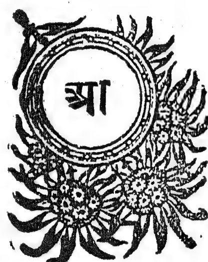
यात्रियों को भोजन नहीं मिल सकता था। इस भय से हडसन के मल्लाहों ने विश्वासघात कर एक गुप्त षडयन्त्र रचा और अकस्मात हडसन को रस्सी में बाँध कर उसे आठ साथियों के साथ एक छोटी सी नाव में समुद्र में बहा दिया। उसके पश्चात् हडसन का क्या हुआ इसका पता न चला, उसका कहीं समुद्र में प्राणान्त हो गया। जहाज पर के शेष मल्लाह भी सकुशल न रह सके। उन्होंने एक स्थान पर एस्किमो लोगों पर आक्रमण किया जिसके परिणाम-स्वरूप उनका मुखिया ग्रीन और चार अन्य व्यक्ति इस लोक से चल बसे। छः मल्लाहों ने किसी प्रकार इंग्लैंड तक यात्रा की। वहाँ वे आजीवन बन्दी कर लिए गये। इस प्रकार इस भीषण यात्रा का अन्त हुआ।

अन्त में विलियम बैफिन का नाम लेकर इस अध्याय का अंत किया जा सकता है। इसने १६१२ और १६१४ ई० के बीच उत्तरी-पश्चिमी मार्ग की खोज में कई बार यात्राएँ की। इसने सन् १६१४ ई० में हडसन आखात की यात्रा कर देख लिया कि उसके पश्चिम कोई जलमार्ग मिलने की सम्भावना नहीं है। इसी यात्रा में उसने आखात के उत्तर का भूखंड देखा जो उसके नाम पर बैफिन प्रदेश के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सन् १६१६ ई० में बैफिन ने उस ओर यात्रा की जिस ओर पहले डेविस ने की थी। उसने ग्रीनलैंड के पश्चिमी तट की यात्रा की और डेविस ने अधिक से अधिक उत्तर जहाँ तक यात्रा की थी उसके आगे तक जाकर बैफिन आखात का स्मिथ जल-प्रणाली

तक अन्वेषण किया। फिर दक्षिण की ओर लंकास्टर जल-प्रणाली को देखा। परन्तु उसको विश्वास हुआ कि यह एशिया के महासागर को मिलानेवाली जलप्रणाली नहीं हो सकती और सम्भवतः उसमें बर्फ भी जमी थी, इस कारण उस ओर न बढ़ सका। इस प्रकार उसने देख लिया कि समुद्र-मार्ग से एशिया तक पहुँचानेवाली कोई जलप्रणाली नहीं है।

१५—कनाडा में फ्रांसवासी



ज कल उत्तरी अमेरिका में संयुक्त राज्य के उत्तर का भाग ब्रिटिश साम्राज्य का भाग है जो कनाडा नाम से प्रसिद्ध है। इसी के दक्षिणी भाग में सेंट लारेंस नाम की प्रसिद्ध नदी प्रवाहित होती है। इस नदी का उद्गम-स्थल विशाल झीलों का प्रदेश है जिसमें सुपीरियर, मिचिगेन आदि कई झीलें हैं। सेंट लारेंस नदी समस्त झीलों को एक दूसरे से मिलाती हुई उनका पानी अपने चौड़े पेटे में रखकर समुद्र में पहुँचाती है। इन झीलों और सेंट लारेंस नदी के समीप की भूमि कनाडा को वैभवशाली बनाने वाली है। इस भूखंड में वहाँ की मुख्य बस्ती, उद्योग-धंधा और व्यापार के केन्द्र-स्थल बड़े बड़े नगर हैं। इस भूभाग की खोज करने का श्रेय फ्रांस वालों को प्राप्त है।

जिस समय योरप-निवासियों ने पन्द्रहवीं शताब्दी के पश्चात् संसार के भिन्न २ भागों का अन्वेषण कर उन पर अधिकार जमाना प्रारंभ कर दिया था उस समय पहले पहल पुर्तगाल और स्पेन दो ही देश इस क्षेत्र में दिखाई पड़ते थे। जिस समय पूर्व की ओर से पुर्तगाल और पश्चिम की ओर से स्पेन वालों के जहाज व्यापार और लूट द्वारा प्राप्त असीम धन लाद कर योरप के समुद्र-तट तक पहुँचते थे उन्हें योरप के अन्य देश देखकर स्तब्ध हो उठते थे। पिज़ारों और अलमेगरो ने पेरू और चिली में अपनी पहुँच कर अतुल वैभव प्राप्त किया था। कार्टीज़ ने मेक्सिको पर अपना प्रभुत्व जमा असीम कोष उपलब्ध किया था। इनकी विस्मयजनक सफलता को देख कर अन्य देशों ने भी जहाज़ों को अज्ञात् स्थानों को ज्ञात करने के लिए भेजना प्रारम्भ कर दिया था। उन देशों में से एक फ्रांस भी था जिसके प्रयत्न से कनाडा का भीतरी भाग ज्ञात हो सका।

यद्यपि कनाडा के तट तक अन्य देशों के जहाज फ्रांस के पूर्व ही पहुँच चुके थे और लैब्रेडर के तट पर मछलियों के आखेट में विशेष लाभ होने से वहाँ पर मछवाहों के जहाज़ों का ताँता लगा रहता था, परन्तु कनाडा के अंतर्भाग में वे नहीं पहुँच पाते थे। इसका श्रेय फ्रांस के नाविक जैकीज़ कार्टियर को है।

फ्रांस के सम्राट ने किसी नए देश को ज्ञात करने के लिए सन् १५२४ ई० में कार्टियर के पूर्व वेरेजेनो नाम के एक व्यक्ति को भेजा था। यह व्यक्ति इटली के फ्लोरेंस नगर का था परन्तु फ्रांस-

सम्राट की आज्ञा से इसने उस देश की ओर से यात्रा की थी। यह तीन जहाज़ों को लेकर उत्तरी अमेरिका में फ्लोरिडा के उत्तर में केरोलिना प्रान्त के तट पर पहुँचा। वहाँ से इसने उत्तर की ओर यात्रा की। यात्रा में हडसन नदी मिलने पर उसके अन्वेषण का प्रयत्न किया परन्तु हवा के प्रतिकूल प्रवाह के कारण फिर समुद्र में ही यात्रा प्रारम्भ करनी पड़ी। यहाँ से अधिक उत्तर बढ़ने पर न्यू फ़ाउंडलैंड मिल सका। इतनी दूरी तक देखे हुए भाग को वेरेज़ेनो ने नया भूभाग समझ न्यू फ्रांस नाम दिया। यद्यपि वेरेजेनो की यात्रा का कोई महत्व नहीं है परन्तु इसका नाम इसलिए उल्लेखनीय है कि फ्रांस की ओर से इसीने पहले पहल अमेरिका तक की यात्रा की थी। इसने तीन बार फ्रांस से अमेरिका तक यात्रायें कीं परन्तु तीसरी यात्रा में ही यह अपने सभी साथियों के साथ समुद्र में कहीं जलमग्नहो गया वा कहीं पर जंगली लोगों द्वारा मार डाला गया। इस कारण इसका लोगों को कुछ भी पता न चला।

वेरेज़ेनो के अपने साथियों सहित लुप्त हो जाने के कारण फ्रांस वालों का उत्साह कुछ भंग सा हुआ, परन्तु १० वर्ष पश्चात् जैकीज़ कार्टियर ने सन् १५३४ ई० में यात्रा करने का साहस किया जिससे वेरेजेनों का कुछ पता लगने के साथ नये भूखंडों का भी अन्वेषण किया जा सका। इसने दो छोटे जहाजों के साथ यात्रा प्रारम्भ की और फ्रांस के सेंटमैलो बन्दर से चल कर न्यूफाउंड लैंड के तट पर पहुँच सका। वहाँ से उत्तर की ओर चल कर न्यूफाउंडलैंड

और लैब्रेडर के मध्य की बेली द्वीप नामक जल-प्रणाली पार की गई। यहाँ से न्यूफाउंडलैंड द्वीप के पश्चिमी तट पर दक्षिण की ओर यात्रा प्रारंभ की गई।

यहाँ से सेंट लारेंस की खाड़ी में यात्रा करते हुए महाद्वीप का तट दिखाई पड़ा। यह भूखंड सेंट लारेंस नदी के मुहाने के दक्षिण का प्रदेश था जो अब न्यू ब्रंजविक नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ पर एक खाड़ी मिली जिसका नाम उसने चालियर खाड़ी रक्खा था। इस खाड़ी के उत्तर भाग का प्रान्त बड़ा ही सुरम्य और मनोमोहक था। यहाँ पर अन्न प्रचुर मात्रा में तो उत्पन्न होता ही था, साथ ही अंगूर की बेलों, सुन्दर फूलों के पौदों और मधुर फलों के पेड़ों का इतना बाहुल्य था कि इस सुन्दर स्थान को छोड़ने की यात्रिया की इच्छा ही नहीं होती थी। इस स्थान के निवासियों ने भी मित्रवत् व्यवहार कर व्यापारिक वस्तुओं की लेन-देन की।

चालियर खाड़ी से उत्तर की ओर चल कर एक दूसरी खाड़ी मिली। उसके समीप रहने वालों में से दो व्यक्तियों को उसने जहाज पर बैठा लिया जिससे दूसरी यात्रा में उनसे दुभाषिये का काम लिया जा सके। आगे बढ़ने पर ऋतु अनुकूल न होने के कारण जहाज फ्रांस लौट गए। लौटने पर कार्टियर ने इन नए भूखंडों का ऐसा मनोरंजक वर्णन किया कि तुरन्त ही उसे दूसरी यात्रा करने की आज्ञा दी गई। इस प्रकार १८३५ ई० में वह तीन बड़े जहाजों के साथ यात्रा प्रारम्भ कर सका। अपने साथ लाये हुए दो मूल निवासियों द्वारा कार्टियर ने सेंट लारेंस नदी का

वर्णन सुना, इस कारण उसने इस नदी, के द्वारा भीतर के प्रदेश का अन्वेषण करने का निश्चय किया।

नदी का यह मार्ग संकट-रहित नहीं था। तट पर ऊँचे २ पहाड़ खड़े थे जिन पर घने जंगल पानी के तट तक खड़े थे। इस प्रकार सारा तट अन्धकारमय ही दिखलाई पड़ता था। कहीं कहीं छोटे छोटे सोते पहाड़ पर से नदी में मिलते हुए दिखलाई पड़ते थे जिनसे सघन वन में कुछ खुला स्थान दिखाई पड़ जाता था। मार्ग में मूल निवासियों की डोंगियाँ भी जहाँ तहाँ दिखाई पड़ती थीं परन्तु कहीं पर उन्होंने शत्रुभाव प्रदर्शित करने का प्रयत्न नहीं किया। इस प्रकार नदी में यात्रा कर आर्लियन्स द्वीप दिखाई पड़ा। इस द्वीप के सम्मुख तट पर स्टेडेकोना नाम का नगर बसा हुआ था जहाँ पर आजकल क्वेबेक नगर स्थित है। स्टेडेकोना के निवासियों ने मित्रवत व्यवहार किया और परस्पर कुछ व्यापारिक वस्तुओं की लेन-देन हुई।

कार्टियर ने यहां पर सुना कि और आगे बढ़ने पर एक बहुत ही सुन्दर नगर मिल सकता है जिसका नाम होचेलेगा है। उसकी बहुत अधिक प्रशंसा सुन कर उसने वहाँ जाने का निश्चय किया। स्टेडेकोना वाले नहीं चाहते थे कि नवागन्तुक उस नगर तक जाँय, इस कारण उन्होंने मार्ग में नाना प्रकार के संकटों का वर्णन किया। अपनी बात का प्रभाव न पड़ते देख उन्होंने कुछ आदमियों को कुत्ते की खाल पहना दैत्य का रूप बना कर चुपके से नाव पर जहाज के समीप भेजा। फिर लौट कर उन्होंने जंगल से विकट शब्द

कर डराने का प्रयत्न किया, परन्तु कार्टियर ने अपने कुछ आद-मियों को वहीं पर छोड़ उस नए नगर की ओर छोटी नाव पर यात्रा प्रारम्भ की। १२ दिन तक यात्रा करने के पश्चात् वह नगर दिखाई पड़ा। नगर-निवासियों ने नवागन्तुकों का बड़े हर्ष से स्वागत किया। उन्हें अनुमान हुआ कि ये स्वर्ग से आये हुए देवता हैं और इनसे मनोवांछित फल मिल सकता है। इसके परि-णाम-स्वरूप कितने ही लंगड़े लूले, और अंधे इनके स्पर्श से अपने अंग के ठीक हो जाने की आशा से इनके पास पहुँचे। कार्टियर समझता था कि जब तक वे मूल निवासी भ्रम में हैं तभी तक कल्याण है अन्यथा वे ही विकट शत्रु सिद्ध हो सकते हैं। इस कारण शीघ्र ही उसे वहां से लौट आना पड़ा।

आधुनिक काल में जहाँ पर व्यापारिक नगर मांटरियल बसा हुआ है उसके समीप ही यह होचेलेगा नगर द्वीप पर बसा था। इसके चारों ओर शत्रुओं से रक्षा के लिए लकड़ी की तेहरी चहारदीवारी बनी हुई थी। चहारदीवारी के पीछे चारों ओर ऊँचे चबूतरे बने थे जिन पर से बाहर के शत्रुओं पर बाण की वर्षा की जा सकती थी। नगर में प्रवेश करने के लिए एक ही द्वार था जिस पर बड़ा कड़ा पहरा रक्खा जाता था। नगर के अंदर लकड़ी के बने हुए लगभग ५ लम्बे लम्बे मकान थे जो एक एक परिवार के लिए कई छोटे-छोटे घरों में विभाजित किए गए थे। नगर-निवासियों के भोजन के लिए अन्न चहारदीवारी के अंदर प्रचुर राशि में एकत्रित था।

कार्टियर ने अपने जिन साथियों को स्टेडेकोना में छोड़ दिया था उन्होंने कुछ आक्रमण की आशंका होने से अपनी रक्षा के लिए एक दुर्ग बना लिया था। कार्टियर जब वहाँ लौटकर आया तो जाड़े का मौसम आ गया था, इसलिए जाड़े भर उसी दुर्ग में रहना पड़ा। यहाँ पर थोड़ी जगह में अपर्याप्त मात्रा में भोजन कर बड़े कष्ट में दिन काटने पड़े। दुर्भाग्यवश एक बीमारी भी ऐसी फैली कि कितने ही यात्रियों की मृत्यु होगई और शेष की अवस्था मरणासन्न हो चली। मरों हुओं को दफ़नाने के लिए क़ब्र खोदने की शक्ति भी इनके हाथों में नहीं रह गई। इसी समय एक उस स्थान के निवासी ने बड़ी करामात कर दिखलाई। उसने एक पेड़ की पत्ती चाय की भाँति बनाकर रोगियों को पिलाया और वे स्वस्थ हो गए।

जब किसी प्रकार जाड़ा समाप्त हुआ तो यात्रियों ने तुरन्त फ्रान्स लौटने का निश्चय किया परन्तु साथ ही स्टेडेकोना के सरदार वा राजा को भी फ्रांस ले जाने का निश्चय हुआ और वह बन्दी कर लिया गया। वहाँ के निवासियों ने बड़ा शोकाश्रु बहाया परन्तु सरदार ने उन्हें फिर लौट आने का विश्वास दिलाकर उनको आश्वासन दिया। इस प्रकार ५ मई को चलकर सभी यात्री ६ जुलाई, १५३६ ई० को फ्रांस में पहुँच सके।

कार्टियर के फ्रांस लौटने पर लोगों ने सुना कि सेंट लारंस नदी के समीप की भूमि बहुत उर्वर और अन्न तथा फलों से आच्छादित है। साथ ही खनिज पदार्थों का भी बाहुल्य है। इस

कारण इस प्रान्त में उपनिवेश बसाने का प्रयत्न किया गया और कुछ ही दिनों में बनों के स्थान पर हरे भरे खेत और झोपड़ों तथा गाँवों के स्थान पर बड़े बड़े व्यापारिक नगर दिखाई पड़े। फ्रांस वालों के कनाडा में इस प्रकार बस्ती बना लेने पर क्वेबेक युद्ध में अंग्रेजों ने इन्हें पराजित कर किस प्रकार यहाँ पर अपना आधिपत्य जमाया इसका वर्णन अन्यत्र मिल सकता है।

१६–अफ्रिका के भीतरी भाग की खोज



फ्रिका महाद्वीप एशिया और योरप दोनों महाद्वीपों के निकट है। प्राचीन काल में इसका इन दोनों महाद्वीपों से सम्बंध रहता आया है। फलतः इस महाद्वीप के तटस्थ देशों के साथ हम प्राचीन सभ्य जातियों को व्यापार करते देखते हैं। इस महाद्वीप का अधिक भूभाग एक बहुत ही विस्तृत मरुभूमि सहारा से घिरा हुआ है जिससे इसके अंतर्भाग का ज्ञान हो सकने में एक बड़ी कठिनाई रहती आई है, फिर भी कतिपय जातियों का इसके भीतरी भाग में प्रवेश करने का उल्लेख मिलता है। जिस समय फीनीशियन लोगों ने अपना व्यापार-क्षेत्र बहुत विस्तृत किया था उस समय उन्हें अवश्य ही अफ्रिका के अंतर्भाग का बहुत कुछ पता लग सका होगा। फलतः फीनीशियन लोगों के उपनिवेश कार्थेज की

सेना में बहुसंख्यक हाथियों के होने का प्रमाण मिलता है। अफ्रिका के उत्तरी भाग में हाथी का निवास कहीं नहीं है, इस कारण वे सहारा के दक्षिण मध्य अफ्रिका से अवश्य ही आए होंगे। इसके साथ ही फीनीशियन लोगों के उद्योग से मध्य अफ्रिका से अन्य व्यापारिक वस्तुएँ भी उत्तरी अफ्रिका तक पहुँचती, अतएव हमें अनुमान हो सकता है कि अफ्रिका के इन भागों का सभ्य संसार को ज्ञान रहा होगा।

फीनीशियन लोगों के अतिरिक्त अरब के व्यापारियों द्वारा भी ईसा की सातवीं शताब्दी में सहारा का दक्षिणी भाग पार किए जाने का उल्लेख मिलता है जो ऊँटों के कारवाँ पर यात्रा करते थे। इन व्यापारिक यात्राओं के अतिरिक्त कुछ अरब निवासी यात्रियों का सहारा पार कर अफ्रिका के पश्चिमी तट के देशों में पहुँचने का उल्लेख मिलता है। इन यात्रियों में एड्रिसी और इब्न बतूता का सहारा पार कर अफ्रिका के पश्चिमी भाग में स्थित सेनो और टिम्बकटू नगरों तक पहुँचने की यात्राएँ बहुत कुछ विश्वासनीय हैं।

परन्तु अफ्रिका के अंतर्भाग के सम्बंध में इस प्रकार जितना ज्ञान हो सका था वह आधुनिक युग में रक्षित न रह सका और इसके भीतरी भाग के सम्बंध में तरह तरह की बातें सुनी जातीं। इन सन्दिग्ध बातों से सन्तोष न कर आधुनिक युग के अन्वेषकों ने यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए बड़ी भीषण से भीषण यात्रायें कीं। उन्हीं यात्राओं में से कुछ प्रसिद्ध यात्राओं का यहाँ पर वर्णन किया जाता है।

बहुत दिनों तक इस बात का लोगों को यथार्थ ज्ञान नहीं था कि मिस्र देश की प्रसिद्ध नदी नील का उद्गम कहाँ है। मिस्र प्राचीन काल में एक बड़ा ही सभ्य देश था, इस कारण हम अनुमान कर सकते हैं कि मिस्र वालों को इसके उद्गम का ज्ञान अवश्य होगा परन्तु नील नदी में उद्गम की ओर यात्रा कर सकना सुगम नहीं था। खार्तूम नगर तो नदी नाव चलाने योग्य है परन्तु उसके आगे स्थान स्थान पर विकट धारायें निकलती हैं। इसके साथ ही खार्तूम नगर से नीचे ही नदी का बेसिन विशेष ऊपजाऊ है। इस कारण मिस्रवालों ने भूमध्य सागर के तट के समीप और नील नदी के बेसिन के उपजाऊ भाग को छोड़कर विशेष आगे जा कर नदी के उद्गम का पता लगाने की आवश्यकता न समझी होगी। फलतः आधुनिक युग में अन्वेषण की दृष्टि से उसका पता लगाने का उद्योग किया गया।

खार्तूम नगर के समीप नील नदी की मुख्य धारा में उसकी एक सहायक नदी नीली-नील आकर मिलती है। नीली नील का उद्गम-स्थान अबीसीनिया प्रदेश में है। जेम्स ब्रूस नाम के एक अंग्रेज ने मुख्य नील नदी का उद्गम-स्थान खोजने के प्रयत्न में नीली नील के उद्गम का ही अन्वेषण किया। यहाँ पर ब्रूस की यात्रा का संक्षिप्त वर्णन देना अनुचित न होगा।

ब्रूस स्काटलैंड का रहने वाला था। इसे यात्रा करने की बड़ी लालसा थी। इसने निश्चय किया था कि मैं नील नदी के उद्गम का पता लगाऊँगा। सौभाग्यवश उत्तरी अफ्रिका के अल्जि-

यर नगर में इसे इंग्लैंड के राजदूत का पद मिला। वहाँ पर उसने अपनी यात्रा में सुविधा प्राप्त होने के लिए दो वर्ष तक उन भाषाओं को सीखा जो अफ्रिका में बोली जाती थीं। साथ ही उसने कुछ चिकित्सा-शास्त्र का भी अध्ययन किया। यात्रा की तैयारी हो जाने पर उसने सन् १७६८ ई० में नील नदी के उद्गम की ओर नाव पर चलना प्रारम्भ किया, परन्तु कुछ दूर जाने पर ही एक व्यक्ति के परामर्श से उसने नदी को छोड़ कर लाल सागर के तट तक कारवाँ के साथ जाकर नौका द्वारा अबीसीनिया देश में पहुँचने का निश्चय किया जहाँ से उद्गम तक सुगमतया यात्रा की जा सकती थी। अबीसीनिया तक पहुँचने में ब्रूस को कुछ कठिनाई हुई। एक स्थान पर एक मुसलमान राजा ने उसे मरवा डालना चाहा, परन्तु वहाँ से किसी प्रकार बच सका। जब वह अबीसीनिया की राजधानी गोंडार नगर में पहुँचा तो वहाँ पर राजा के लड़के चेचक से ग्रस्त थे। ब्रूस ने खुली हवा और साबुन के साधारण प्रयोग से रोग दूर कर देने में सफलता प्राप्त की। इस उपकार के बदले वह अबीसीनिया राज्य के एक सूबे का सूबेदार नियुक्त कर दिया गया, परन्तु ब्रूस ने उससे छुटकारा पाकर नील नदी के उद्गम की ओर यात्रा की। जिस समय वह उद्गम की ओर यात्रा कर रहा था उसी समय एक दूसरे सरदार ने गोंडार पर आक्रमण कर अपना अधिकार जमा लिया। परंतु इस आक्रामक सरदार ने भी ब्रूस से मित्र भाव प्रकट किया। अतएव ब्रूस सकुशल अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच सका, परन्तु

यह उद्गम नील नदी का नहीं, प्रत्युत उसकी सहायक नीली नील का था। उद्गम स्थान को देख कर ब्रूस लौट पड़ा। मार्ग में उसे विशेष कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं।

ब्रूस ने जिस मुख उद्देश्य से यात्रा प्रारम्भ की थी वह पूर्ण नहीं हुई। मुख्य नील के उद्गम का अन्वेषण बहुत पीछे कुछ अंग्रेज़ अन्वेषकों ने किया, परन्तु उसकी यात्रा से यह लाभ हुआ कि अफ्रिका के अंतर्भाग का अन्वेषण करने के लिए इंग्लैंड में विशेष उत्सुकता उत्पन्न हुई। इसके परिणामस्वरूप अन्वेषण-कार्य के लिए धन जुटाने के लिए एक अफ्रिकन समिति की स्थापना हुई। इसी समिति की ओर से मुंगोपार्क नाम के विख्यात अन्वेषक ने सन् १७९५ ई० में अफ्रिका के पश्चिमी भाग में नाइजर नदी के अन्वेषण के लिये यात्रा प्रारम्भ की। मुंगो पार्क स्काटलैंड का रहनेवाला था। इसने भौगोलिक ज्ञान की वृद्धि करने के लिए दो भीषण यात्राएँ कर मार्ग में ही मृत्यु का सामना कर अपना नाम सदा के लिए अमर कर दिया। उन दिनों लोगों को अफ्रिका की कितनी ही नदियों के मार्ग का कुछ भी ज्ञान नहीं था। उन्हीं में से नाइजर नदी के उद्गम और मुहाने का पता लगाने के लिए मुंगोपार्क को अफ्रिकन समिति ने भेजा था।

मुंगो पार्क ने १७९५ ई० में गैम्बिया नदी के मुहाने से भीतर की ओर यात्रा की। वह स्वयं घोड़े पर सवार था और उसका सामान खच्चरों पर लदा था। उसके साथ दो हब्शी नौकर पैदल चल रहे थे। इनके अतिरिक्त कुछ और यात्री भी साथ मिल गये

थे। कुछ दूर चलने के पश्चात् गैम्बिया नदी के तट पर मेडिना नाम का एक प्रसिद्ध नगर मिला। यहां के राजा ने मुंगो पार्क का स्वागत किया और आगे की यात्रा के लिए एक पथ-प्रदर्शक साथ कर दिया। आगे बढ़ने पर एक दूसरा नगर मिला जहाँ का राजा डाकू था। उसको कुछ भेंट देकर मुंगो ने प्रसन्न करने का प्रयत्न किया। राजा ने भेंट के साथ उसका छाता और सबसे बढ़िया कोट भी ले लिया। इस के बदले में उसे कुछ खाद्य पदार्थ मिल सका। मुंगो पार्क का सफेद चमड़ा देख कर वहाँ वालों ने अनुमान किया कि बालकपन में नित्य दूध में डुबोये जाने से उसका ऐसा रंग हो गया है। इस नगर को छोड़ने के पश्चात् पार्क को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। मार्ग में बराबर डाकुओं और जंगली जानवरों से मुठभेड़ होने का भय बना रहता। एक स्थान पर एक नगर के राजा द्वारा उसका सब खाद्य पदार्थ और धन लूट लिया गया। किसी प्रकार दिन काट कर पार्क ने सेनेगल नदी तक यात्रा की।

सेनेगल नदी पार कर लेने पर कई राज्यों को पार कर मुंगो पार्क ने लुडुमार नामक राज्य में प्रवेश किया जिसपर मूर लोगों राज्य करते थे। मूर लोग मुसलमान थे, इस कारण एक ईसाई यात्री का वे स्वागत नहीं कर सकते थे। फलतः पार्क बन्दी कर लिया गया और बीनाउन नामक स्थान में राजकीय पड़ाव पर लुडुमार के शासक अली के पास पहुँचाया गया। वहाँ पर उसे एक झोपड़ी में रक्खा गया। उसके साथी की भाँति एक सूअर भी

वहाँ बँधा था। पार्क की सभी बची हुई वस्तुएं छीन ली गई और उसके साथ कठोरता से व्यवहार होने लगा। उसे बार बार मूर लोगों से अपमानित और दंडित हो कर समय बिताना पड़ा।

इतनी आपदाओं को सहने के पश्चात् पार्क को मुक्ति का एक अवसर मिला। लुडुमार पर एक दूसरे सरदार ने आक्रमण कर दिया। इस अवसर से पार्क ने लाभ उठाया और वहां से भाग निकला। किसी प्रकार शत्रुओं के हाथ से निकल कर वह एक जंगल से भरे देश में अकेले पहुँचा जहां न तो खाने के लिए मुट्ठी भर आहार था और न पीने के लिए एक चुल्लू पानी। चलते चलते वह एक स्थान पर मूर्छित हो गया और वहीं पर उसकी मृत्यु भी हो गई होती, परन्तु उसके सौभाग्यवश घनघोर वर्षा होने लगी और बादलों के पानी ने उसकी जीवन-रक्षा की। आधी रात को उसे एक गाँव मिल सका जहाँ एक बुढ़िया ने उसे कुछ भोजन दिया।

इस प्रकार संकटों का सामना करते हुए मुंगो पार्क ने आगे की ओर यात्रा जारी रक्खी। अन्त में वह एक बड़ी नदी के तट पर पहुँचा। यह नाइजर नदी थी जिसकी खोज में उसने इतनी आपदाओं का सामना किया था। नदी के किनारे किनारे कुछ दूर चलने पर सेगो नाम का प्रसिद्ध नगर मिला। यह अफ्रिका में पार्क के देखे हुए नगरों में सब से बड़ा था। बहुत से मकान दोमहले थे। बड़ी बड़ी नावों से नदी भरी हुई थी, परन्तु वहाँ के राजा ने पार्क को नगर में न घुसने दिया। अतएव उसे नदी के

दूसरे किनारे पर एक गाँव में ही रहना पड़ा, परन्तु वहाँ भी उसे कोई आश्रय देनेवाला न मिला, दिन भर निराहार उसे एक वृक्ष के नीचे बिताना पड़ा। अन्त में सूर्यास्त हुआ, रात होने लगी और सिंह गर्जने लगे, परन्तु कहीं आश्रय का ठिकाना नहीं दिखाई पड़ा। किसी प्रकार एक बुढ़िया ने दयाभाव दिखलाकर उसे कुछ खाना दिया और अपनी झोंपड़ी में स्थान दिया।

दूसरे दिन पार्क ने नदी के बहाव की ओर यात्रा प्रारम्भ की। मार्ग में उसे भिन्न २ राज्यों के विरोध और जंगली जन्तुओं का तो सामना करना पड़ा ही, उसका स्वास्थ्य भी बहुत बिगड़ चुका था। नदी में बाढ़ भी आगई थी, इस कारण सेगो से ८० मील दूर सिला नगर तक जाकर उसने लौटने का निश्चय किया। इस समय पार्क के पास भोजन वा द्रव्य कुछ भी नहीं था, परन्तु लौटने के लिए सैकड़ों मील की यात्रा करनी थी। किसी प्रकार वह एक स्थान तक पहुँच सका जहाँ से गैम्बिया नदी तक दासों को ले जाने वाला कारवाँ मिला। उसके साथ वह सकुशल गैम्बिया तक लौट सका। वहां से जहाज पर इंग्लैंड जा सका।

पार्क ने इस यात्रा में जितनी कठिनाइयों का सामना किया था उनको देखकर उसे फिर यात्रा करने का साहस नहीं होना चाहिए था, परन्तु सन् १८०५ में उसने दुबारा यात्रा कर नाइजर नदी के उद्गम और मुहाने का पता लगाने का प्रयास किया। जिस समय पार्क ने गैम्बिया नदी के मुहाने से यात्रा की वह यात्रा के अनुकूल नहीं था। वर्षा ऋतु का आगमन हो रहा था। परन्तु

अपने उत्साह में पार्क ने यात्रा प्रारम्भ कर दी। शीघ्र ही वर्षा भी होने लगी। फलतः मार्ग में घुटने भर पानी हो गया। साथ ही गर्मी भी बहुत कड़ी पड़ रही थी। इस कारण इन यात्रियों पर ज्वर ने आक्रमण किया। पार्क स्वयं बहुत दुर्बल हो गया।

किसी प्रकार नाइजर नदी तक यात्रा की गई। वहाँ उसके कुल ३८ साथियों में ७ ही बच रहे थे। इनके साथ पार्क ने एक किराए की नाव पर धारा के साथ यात्रा प्रारम्भ की। नदी में स्थान स्थान पर भयंकर चट्टान थे और दरियाई घोड़े भरे हुए थे। तट पर मूर आक्रामकों का निवास था। फिर भी पार्क ने यात्रा प्रारम्भ की और मार्ग में ही उसका प्राणान्त हो गया। उसके संबंध में कुछ समाचार न मिल सका परन्तु सन् १८१० ई० में एक व्यक्ति उसकी खोज में भेजा गया तो उसे पार्क का एक पथ-प्रदर्शक मिल सका। उसने बतलाया कि वे नदी के बहाव की ओर जा रहे थे। टिम्बकटू नगर पार कर वे बूसा के समीप पहुँचे थे। वहीं पर उन पर मूल निवासियों ने आक्रमण कर दिया और पार्क तथा उसके सभी अंग्रेज साथी नदी में डूब गये।

मुंगो पार्क की भाँति अफ्रिका के एक दूसरे अंग्रेज अन्वेषक डा० लिविंग्स्टन की यात्रा बहुत ही प्रसिद्ध हैं। पार्क की भाँति मार्ग में ही इसकी भी मृत्यु हुई। लिविंग्स्टन बड़ा ही उद्योगी पुरुष था। इसका इंग्लैंड के लंकाशायर प्रान्त में एक इतने निर्धन वंश में जन्म हुआ था कि इसे दस वर्ष की अवस्था में ही कपड़े के कारखाने में नौकरी करनी पड़ी। लिविंग्स्टन ने वहीं से अपने

उद्योग का परिचय देना प्रारम्भ किया। उसने १४ वर्ष तक कारखाने में नौकरी की, परन्तु इतने समय में उसने बहुत शिक्षा भी प्राप्त कर ली। दिन भर काम करने के पश्चात् वह शाम को लगने वाली पाठशाला में पढ़ा करता। दिन को काम करते समय भी वह करघे पर किताब रक्खे कुछ पढ़ा करता। इस प्रकार कुछ शिक्षा पाकर लिविंग्स्टन ने २४ वर्ष की अवस्था में लन्दन की ईसाई-धर्मप्रचारिणी समिति की ओर से काम करने का निश्चय किया। समिति ने उसे चिकित्सा-शास्त्र अध्ययन करने के लिए सहायता दी। इस प्रकार उसने तीन वर्ष में चिकित्सा शास्त्र का पूरा अध्ययन कर उपाधि प्राप्त की। शिक्षा समाप्त कर लेने पर लिविंग्स्टन ने ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए चीन में प्रचारक बन कर जाने का निश्चय किया, परंतु उसी समय चीन में युद्ध प्रारंभ हो गया था, इस कारण उसने अफ्रिका जाने का निश्चय किया। वह सन् १८४० ई० में अफ्रिका के बेचुआना प्रान्त में पहुँचा। वहाँ उसने छः मास तक मूल निवासियों की परिस्थिति देखी। यहाँ पर रहते हुए ही उसके मन में भौगोलिक अन्वेषण की इच्छा जागृत हो उठी और उसने कई भीषण यात्रायें कर बहुत से अज्ञात स्थानों का सभ्य संसार को ज्ञान कराया। बेचुआना में रहते ही एक बार वह सिंह द्वारा पकड़ लिया गया था, परन्तु दैवयोग से सिंह के मुँह से बचकर निकल आया।

लिविंग्स्टन की इच्छा थी कि मैं दक्षिणी अफ्रिका के पश्चिमी तट पर स्थित लोआंडा नगर से लेकर हिन्द महासागर के तट पर

स्थित किलिमेन नगर के मध्य अफ्रीका के सम्पूर्ण भूभाग का अन्वेषण करूँ। इसके लिए उसने सन् १८५२ ई० में अपने बाल-बच्चों को इंग्लैण्ड भेज देने के लिए उत्तमाशा अंतरीप के निकट स्थित केप टाउन बंदर तक यात्रा की जिससे उनसे निश्चिंत होकर वह अन्वेषण-कार्य कर सके।

पहले लिविंग्स्ट ने केप टाउन से उत्तर की ओर लोआंडा नगर तक जाने का विचार किया। इस यात्रा के पूर्व सन् १८४९ ई० में उसने एक झील का अन्वेषण करने के लिए कालाहारी के रेगिस्तान में यात्रा की थी। सन् १८५१ ई० में वह और उत्तर यात्रा कर मैकोलोलों नामक जाति के देश में पहुँच सका था जिसका राजा लिनयंटी नगर में रहता था। इस प्रान्त के उत्तर-पूर्व १३० मील की दूरी पर लिविंग्स्टन ने जेंम्बजी नदी का पता लगाया था। इसी नदी के मुहाने पर किलिमेन नगर बसा था। पहले की यात्राओं से इन प्रान्तों का ज्ञान होने से लिविंग्स्टन लिनयंटी नगर तक पहुँच सका। वहाँ के तत्कालीन राजा सेकेलेटू ने इसकी बड़ी सहायता की। उसने कुछ आदमियों को इसके साथ कर दिया। इनके साथ लिविंग्स्टन ने समुद्र तट तक यात्रा कर लोआंडा नगर को देखा। मार्ग में कितनी ही जातियोंके विरोध का सामना करना पड़ा। लिविंग्स्टन स्वयं २७ बार ज्वर-ग्रस्त हुआ। किसी प्रकार लोआंडा पहुँच कर फिर लिनयंटी तक यात्रा की गई।

लिनयंटी से पश्चिम समुद्र-तट तक यात्रा समाप्त होने पर लिविंग्स्टन ने पूर्व की ओर यात्रा प्रारम्भ की। जेम्बजी नदी के

किनारे किनारे कुछ दूर यात्रा करने पर संसार के सबसे बड़े जल-प्रपात का दर्शन हुआ, जिसमें नियाग्रा के जल-प्रपात का चौगुना पानी ३२० फीट की ऊँचाई से एक ४०० फीट गहरे बड़े गर्त्त में गिरता है। इस गर्त्त से पाँच स्थानों पर प्रचुर मात्रा में भाप उठ कर बादलों में मिलती हुई दिखाई पड़ती है। लिविंग्स्टन ने इस प्रपात का दर्शन कर इसका नाम विक्टोरिया जल-प्रपात रक्खा।

इस प्रपात से आगे बढ़कर लिविंग्स्टन ने जेंबज़ी के बहाव की ओर यात्रा प्रारम्भ की। मार्ग में कितनी ही जातियों के विरोध का सामना करना पड़ा। अन्त में एक वन से घिरे मैदान को पार कर नदी के मुहाने पर किलिमेन नगर तक सन् १८५६ ई० में यात्रा समाप्त हो सकी। यहाँ से लिविंग्स्टन इंलैण्ड लौट गया।

सन् १८५८ ई० में वह इंग्लैण्ड से लौटकर फिर अफ्रिका में आया। इस बार वह अपने साथ एक अग्निबोट लेता आया था जो कई टुकड़ों में कर जमीन पर ढोया भी जा सकता था। इसकी सहायता से उसने जेम्बज़ी नदी के मुहाने और उसकी एक सहायक नदी का अन्वेषण किया। इसी समय उसने शिरवा और न्यासा नाम की दो झीलों का पता लगाया। सन् १८६० में उसने अपने उन साथियों को उनके देश मैकोलोलों तक पहुँचाने के लिए यात्रा की जिनको वह ४ वर्ष पूर्व किलिमेन में छोड़ गया था। यह यात्रा आनन्ददायक रही।

इस प्रकार छोटे मोटे अन्वेषणों को कर लिविंग्स्टन ६ वर्ष के पश्चात् फिर इंग्लैण्ड चला गया। वहाँ से उसने सन् १८६६ ई०

में अपनी अंतिम यात्रा के लिए अफ्रिका तक यात्रा की। इस यात्रा का उद्देश्य न्यासा झील के उत्तर-पश्चिम के भूभाग का अन्वेषण करना था जिससे मध्य अफ्रिका की नदियों और झीलों की समस्या हल हो सके। इसी यात्रा में उसकी मृत्यु भी हुई।

इस यात्रा के लिए लिविंग्स्टन ने पहले की यात्राओं की अपेक्षा अच्छी तैयारी की थी, परन्तु कठिनाइयों से उसे छुटकारा न मिल सका। उसके साथ के बहुत से आदमी मार्ग से ही लौट गए। कितनों ने तट पर जा कर प्रसिद्ध किया कि लिविंग्स्टन मार डाला गया। मार्ग में भोजन की भी कमी पड़ गई। किसी प्रकार घने जंगलों और नदियों को पार कर आगे की ओर यात्रा की जा सकी। मार्ग में कई मास तक लिविंग्स्टन को बार बार ज्वर से आक्रान्त रहना पड़ा। किसी प्रकार टैंगानीका झील के दक्षिण मूरो झील तक यात्रा की जा सकी। यहाँ पर दक्षिण में एक दूसरी झील होने का पता पा कर उसने उसका भी अन्वेषण किया और उसकी परिक्रमा कर आस-पास के देश का ज्ञान प्राप्त किया।

इन दोनों झीलों का पता लगाकर वह टैंगानीका झील के पश्चिमी तट पर पहुँचा। यहाँ पर उसे फिर ज्वर ने आ घेरा और उसे एक प्रकार की पालकी में यात्रा करनी पड़ी। इस झील के तट का अन्वेषण कर इसे डोंगी पर पारकर वह युजिजी नगर में पहुँचा जो झील के पूर्वी तट पर स्थित था। लिविंग्स्टन ने इसी नगर को अपना केन्द्रस्थल बनाकर झील के चारों ओर अन्वेषण करने का निश्चय किया। इस समय उसकी अवस्था बड़ी सोच-

नीय हो गई थी। इतनी दूर तक निरंतर पैदल यात्रा करने उपयुक्त भोजन न मिलने और जलवायु के बहुत नम होने के कारण उसका शरीर बहुत ही कृषित हो गया था। इस दशा में भी उसने अन्वेषण-कार्य जारी रखने का प्रयत्न किया। वह झील को डोंगी पर पारकर पश्चिम तट पर पहुँचा। वहाँ से एक नगर तक यात्रा की गई। मार्ग में बड़ी ही मनोरम भूमि मिली। वहाँ पर पहाड़ियाँ सुन्दर विशालवृक्षों से भरी हुई थीं। ऐसी सुन्दर भूमि पहले कहीं देखने को न मिली थी। कई अवसरों पर आगे बढ़ने के लिए इतनी घनी घास को काट कर मार्ग बनाना पड़ता था जो आधी इंच मोटी और १०, १२ फीट ऊँची होती थी।

इस नगर में पहुँच कर लिविंग्स्टन ने युजिजी से कुछ सहायता आने की प्रतीक्षा की परन्तु वह अधिक समय तक न आ सकी, इस कारण किसी प्रकार दिन काटने के लिए वह आस-पास की भूमि का अन्वेषण करता रहा। अन्त में जब किसी प्रकार सहायता पहुँच सकी, तो उसने उत्तर की ओर यात्रा कर लवालाबा नामक नदी का अन्वेषण करना प्रारम्भ किया। इस नदी का कुछ दूर तक अन्वेषण कर लिविंग्स्टन युजिजी लौट आया। वहाँ पर पहुँचते ही उसे स्टेनली नाम का एक दूसरा अंग्रेज मिला जो उसकी सहायता करने और उसका पता लगाने के लिए भेजा गया था। स्टेनली ने ११४ दिन तक यात्रा कर समुद्र-तट से युजिजी तक की यात्रा की थी। जब लिविंग्स्टन ने ऐसे संकट के समय उसकी खोज करने वा सहायता करने वाले व्यक्ति को

युजिजी में देखा तो उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। स्टेनली ने उससे मिलकर प्रार्थना की कि वह इङ्गलैंड उसके साथ ही लौट चले, परन्तु लिविंग्स्टन ने अपने निर्धारित कार्य को पूरा किये बिना लौटना सर्वथा अस्वीकार कर दिया। इस कारण उसे फिर अकेला छोड़ स्टेनली लौट गया। स्टेनली समुद्र-तट से कुछ आदमियों को भेजने का वचन दे गया था। उसके लिए लिविंग्स्टन प्रतीक्षा करता रहा, परन्तु निश्चित समय के एक मास पश्चात् वे आदमी आ सके। उनके आ जाने पर लिविंग्स्टन ने अपना अन्वेषण-कार्य प्रारम्भ किया।

यह यात्रा बड़ी भयंकर थी। वर्षा ऋतु का पूर्ण रूप से आगमन हो चुका था। लिविंग्स्टन इतना रुग्ण हो गया था कि पालकी पर ढोया जाता था। मार्ग में पानी के कारण सब भूमि दलदल की भाँति हो गई थी। भोजन की सामग्री भी समाप्त हो चली थी। इस प्रकार की कठिनाइयों में यात्रा करते हुए एक दिन रात को लिविंग्स्टन की मृत्यु हो गई। लिविंग्स्टन की आत्मा तो इस लोक से चली गई, परन्तु वह मरते दम तक अन्वेषण-कार्य करते रह कर जितने अज्ञात स्थानों का सभ्य संसार को ज्ञान कराने में संलग्न रहा उनसे उसका नाम संसार के अन्वेषण के इतिहास में अमर हो गया।

१७--आस्ट्रेलिया की खोज



रप-निवासियों में किसने आस्ट्रेलिया का पहले पहल पता लगाया इसका ठीक ठीक बता सकना बड़ा कठिन है। कुछ लोगों का कथन है सन् १५२२ ई० में मैगेलेन ने थ्वी की परिक्रमा करते हुए आस्ट्रेलिया का पश्चिमी भाग देखा था, परन्तु यह बात विश्वासनीय नहीं जान पड़ती। सन् १५२७ ई० में पुर्तगाल वालों ने न्यूगिनी द्वीप का पता लगाया था और सन् १६०६ ई० में स्पेन देश के टीर्स नाम के एक नाविक ने आस्ट्रेलिया और न्यूगिनी के मध्य की जल-प्रणाली को पार किया था, परन्तु वह स्थल-खंड पर कहीं न उतरा था। यह विश्वास किया जाता है कि इसी समय कितने ही पुर्तगाल और स्पेन के जहाजों ने आस्ट्रेलिया के तट तक पहुँचने में सफलता प्राप्त की परन्तु स्पेन और पुर्तगाल एक दूसरे के इतने विरोधी थे कि अपने अन्वेषणों को एक दूसरे पर वा अन्य देशों पर प्रकट न होने देने के लिए सर्वथा गुप्त रखते थे। इस कारण आस्ट्रेलिया की यथार्थ खोज का श्रेय इन दोनों देशों में से किसी को न हो कर एक तीसरी जाति को है जो हालैंड की डच जाति थी।

जिन पूर्वी द्वीप-समूहों के अत्यन्त लाभ-प्रद व्यापार क्षेत्र को पुर्तगालवालों ने पहले-पहल अधिकृत कर अपने देश को समृद्धि-शाली बनाने का साधन बनाया था वह कामधेनु अधिक दिनों तक

उनके हाथ में न रह सकी और डच वा हालैंड-वासियों-ने शीघ्र ही उन द्वीपों में अपना अधिकार जमाना प्रारम्भ किया। इन द्वीपों से आगे बढ़कर इन नवागन्तुक नाविकों ने आस्ट्रेलिया तक भी अपनी पहुँच की और सन् १६०६ ई० से १६३० ई० तक इनके कई जहाज आस्ट्रेलिया के तट तक पहुँच सके। इस महाद्वीप का यथार्थ रूप से अन्वेषण करने के लिए सन् १६४२ ई० में एबेल टस्मन नाम के एक नाविक ने हालैंड सरकार की आज्ञा से यात्रा की। टस्मन की यात्रा ही हालैंड के अन्वेषकों में महत्वपूर्ण है।

टस्मन ने अपनी यात्रा जावा द्वीप के बटेविया बन्दर से प्रारंभ की। पहले वह भारत महासागर की यात्रा करते हुए पश्चिम की ओर मारीशस द्वीप में पहुँचा, जो अफ्रिका के पूर्व तट पर स्थित मैडा गास्कर द्वीप से ५५० मील पूर्व की ओर है। मारीशस से उसने अपने जहाज को दक्षिण-पूर्व की ओर बढ़ाया। कुछ दिनों तक यात्रा करने के पश्चात् स्थल-खंड दिखाई पड़ा, परन्तु यह आस्ट्रेलिया के दक्षिणी तट पर स्थित टस्मानिया नाम का बड़ा द्वीप था। टस्मन के बहुत दक्षिण आने के कारण आस्ट्रेलिया महाद्वीप उत्तर की ओर छूट गया था, परन्तु टस्मन ने इस नए भूखंड को उस बड़े महाद्वीप का एक भाग ही समझा जिसके तट पर पहले जहाज आ चुके थे। इस द्वीप के महाद्वीप से पृथक होने का ज्ञान लोगों को पीछे हुआ परन्तु इस के पहले पहल टस्मन द्वारा देखे जाने के कारण इसका नाम टस्मानिया प्रसिद्ध हुआ। इस द्वीप में टस्मन ने मनुष्य की बस्ती के चिह्न और

जंगली जन्तुओं के पद-चिह्न देख कर इस में बस्ती होने का अनुमान किया।

टस्मानिया के दक्षिणी किनारे का चक्कर लगा कर टस्मन ने पूर्व की ओर यात्रा की। यात्रा में भूखंड न दिखाई पड़ने लगा। कई दिन तक यात्रा करने के पश्चात् जहाज न्यूजीलैंड द्वीप में पहुँचा जो आस्ट्रेलिया के पूर्व में है, परन्तु टस्मन ने इसे भी महाद्वीप का भाग होने का ही अनुमान किया। उसका जहाज न्यूजीलैंड के दक्षिणी द्वीप के तट पर उस स्थान पर पहुँच सका था जहाँ टस्मन की खाड़ी है। यहाँ से उत्तरी द्वीप के पश्चिमी तट की यात्रा प्रारम्भ की गई। उत्तरी और दक्षिणी द्वीपों के मध्य की जल-प्रणाली को टस्मन न देख सका। इसके अन्वेषण का गौरव एक दूसरे अन्वेषक को मिलना था जिसके नाम पर इसका नाम कुक का मुहाना पड़ा।

न्यूजीलैंड के उत्तरी द्वीप में टस्कन ने वहाँ के मूलनिवासियों को देखा जो समुद्र में अपनी डोंगी दौड़ाते थे। उन मूलनिवासियों ने अपनी बहुसंख्यक डोगियों पर टस्मन पर आक्रमण कर दिया जिससे टस्मन को शीघ्र ही तट छोड़कर आगे की यात्रा करनी पड़ी। न्यूजीलैंड से आगे बढ़ कर टस्मन ने प्रशान्त महासागर के कुछ द्वीपों का अन्वेषण किया और बटेविया लौट गया।

सन् १६४४ ई० में टस्मन ने उस नूतन महाद्वीप के प्रसार का ठीक ठीक पता लगाने के लिए दूसरी यात्रा प्रारम्भ की, परन्तु उसे विशेष सफलता न मिल सकी और वह उत्तरी तट का कुछ

भाग ही देख सका। इस प्रयत्न के साथ ही हालैंड वालों का अन्वेषण-कार्य भी स्थगित सा हो गया। आस्ट्रेलिया का पूर्वी तट ही विशेष हरा-भरा और उपजाऊ था परन्तु हालैंड वाले उस तट तक नहीं पहुँच सके अतएव उन्होंने पूर्वी द्वीप-समूहों में ही अपना व्यापार-क्षेत्र सीमित रक्खा।

हालैंडवालों के पश्चात् आस्ट्रेलिया की ओर अंग्रेजों का ध्यान आकर्षित हुआ, इस कारण इस महाद्वीप में अंग्रेज अन्वेषकों का आना प्रारम्भ हुआ। उनमें सबसे पहला डेम्पियर था। डैम्पियर एक समुद्री डाकू था जिसने स्पेनवालों के जहाजों और विजित देशों के धनागार लूटने के लिए कितनी ही यात्राएं कीं। उन यात्राओं के अतिरिक्त डैम्पियर ने आस्ट्रेलिया के अन्वेषण के लिए भी यात्रा की। इस सम्बंध में उसकी पहिली यात्रा सन् १६८८ ई० में हुई। इस यात्रा में वह आस्ट्रेलिया के उत्तरी-पश्चिमी तट पर पहुँचा। उसने तट की यात्रा से ही संतोष न कर भूखंड में भी प्रवेश करने का प्रयत्न किया और वहाँ की भूमि, निवासी तथा पैदावार का वर्णन लिखा।

जब डैम्पियर अपनी पहली यात्रा समाप्त कर इंग्लैंड पहुँचा तो उसके वर्णन से आकृष्ट होकर लोगों ने १६९९ ई० में उसे दूसरी बार अन्वेषण-कार्य के लिए भेजा। इस बार यह महाद्वीप के पश्चिमी तट पर शार्क की खाड़ी में पहुँचा। वहाँ से उसने उत्तर-पूर्व की ओर जहाज चलाकर उत्तरी तट की १००० मील तक यात्रा की, परन्तु उसे सर्वत्र ऊसर और सूखी भूमि ही मिली।

यहाँ से न्यूगिनी के उत्तरी तट से हो कर वह बटेविया पहुँचा और वहाँ से इंग्लैंड लौट गया। डैम्पियर की दोनों यात्राओं से विशेष फल तो न निकला, परन्तु यह पहला अंग्रेज था जिसने आस्ट्रेलिया को देखा। इसके पश्चात् अन्य अंग्रेज यात्रियों ने इस महाद्वीप के अन्य भाग का अन्वेषण करने के लिए उगना प्रारम्भ किया और कुछ समय में सारा महाद्वीप उनका उपनिवेश बन गया।

१८—कुक की यात्रायें



यो रोपीय अन्वेषकों में कप्तान कुक अपनी यात्राओं के लिए विशेष प्रसिद्ध है। सन् १७६८ ई० में दक्षिणी प्रशान्त महासागर में कुछ वैज्ञानिक अन्वेषण करने के लिए एक जहाज भेजने की आवश्यकता पड़ी थी। उस यात्रा के लिए कुक ही योग्य नाविक था इस कारण उसकी अध्यक्षता में जहाज भेजा गया। इसी यात्रा में कुक को महत्वपूर्ण अन्वेषण करने का अवसर मिल सका जिससे उसकी बड़ी प्रसिद्धि हुई।

प्रशान्त महासागर के मध्य में टैहिटी नाम का एक सुन्दर द्वीप है। यहीं पहुँचकर कुक को कुछ ज्योतिष सम्बंधी अन्वेषण करना था। उसने द्वीप में पहुँच कर वहाँ के निवासियों से मित्रता स्थापित कर वेधशाला का निर्माण किया और ठीक समय पर अपना अन्वेषण कार्य समाप्त कर लिया। अपना निर्धारित कार्य समाप्त कर

कुक ने दक्षिण-पश्चिम की ओर यात्रा कर न्यूजीलैंड पहुँचने का निश्चय किया। वहाँ पहुँच कर उसने द्वीप के चारों ओर समुद्र-तट की परिक्रमा की और ज्ञात किया कि न्यूजीलैंड आस्ट्रेलिया महाद्वीप का एक भाग नहीं है प्रत्युत एक द्वीप है। इसमें उत्तरी और दक्षिणी दो द्वीप हैं जिन्हें एक जल-प्रणाली पृथक् करती है। वह जल-प्रणाली अब भी कुक के नाम पर ही पुकारी जाती है। कुक ने न्यूजीलैंड के विस्तार का ज्ञान कर वहाँ की उपजाऊ भूमि और मनुष्य-भक्षक किन्तु चतुर निवासियों के सम्बंध में भी बहुत सी बात ज्ञात कीं। उसने देखा कि यहाँ की भूमि में सब प्रकार के फल फूल, अन्न और पौधे भली भाँति उग सकते हैं। न्यूजीलैंड का अन्वेषण कर कुक आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट की ओर बढ़ा। तीन सप्ताह तक यात्रा करने के पश्चात् तट दिखाई पड़ा और एक स्थान पर जहाज ठहराया गया। तट पर नाना प्रकार के वृक्ष और पौधे उगे हुए थे। यहाँ से किनारे किनारे उत्तर की ओर चार मास तक यात्रा होती रही। मार्ग में यात्रियों को पेड़ पौधे, पशु और मनुष्य इस प्रकार के दिखाई पड़ते थे कि उन्हें बड़ा आश्चर्य होता था। इन यात्रियों ने पहले पहल उस विचित्र जन्तु कंगारू का दर्शन किया जो अगले पैरों के छोटे होने से उचककर चलने और अपने बच्चे को अपने शरीर में पेट के नीचे बनी थैली में ले चलने के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ के निवासी अपना अंग लाल और सफेद रंग में रँग लेते थे और वस्त्र के नाम पर उनकी कमर में समुद्र से प्राप्त घोंघों की माला ही होती थी। इन

लोगों ने कुक के प्रति मित्र मित्रवत् ही व्यवहार किया।

कुछ दूर तक तो कुक का जहाज भली भाँति आगे बढ़ता रहा परन्तु एक स्थान पर दुर्भाग्य वश समुद्र-तल के नीचे छिपी चट्टान से टकरा गया और उसके नीचे के कई तख्ते टूट गए। जहाज को तैरता रखने का बड़ा प्रयत्न किया गया, बहुत सा सामान समुद्र में फेंक दिया गया परन्तु बचने की कोई आशा न दिखाई पड़ा। समुद्र-तट भी दूर था, परन्तु बड़े उद्योग के पश्चात् जहाज के तट तक पहुँच सका। तट पर जहाज की मरम्मत कर दी गई। इस दुर्घटना के पश्चात् कितनी ही कठिनाइयों का सामना करते हुए सम्पूर्ण पूर्वी तट पार किया जा सका और यार्क अंतरीप तक जहाज पहुँच सका। वहाँ से टोर्स जलप्रणाली और जावा होते हुए कुक सन् १७७१ ई० में इङ्गलैंड पहुँच सका। इस यात्रा में उसे लगभग ३ वर्ष लग गए थे।

कुक की दूसरी यात्रा जुलाई सन् १७७२ ई० में प्रारम्भ हुई। इसका उद्देश्य दक्षिणी ध्रुव के निकट स्थित महादेश की खोज करना था। उन दिनों लोगों का विश्वास था कि दक्षिणी ध्रुव के निकट एक बड़ा ही विस्तृत देश है जहाँ कल्पनातीत धन, बहु-मूल्य हीरे मोती और सोने चाँदी का बाहुल्य है और वहाँ पर एक अत्यधिक सभ्य जाति का निवास है। कुक का उद्देश्य इसी भूखंड का पता लगाना था। उन दिनों तक दक्षिणी अमेरिका के दक्षिणी छोर हार्न अंतरीप के दक्षिण किसी भी नाविक ने जाने का प्रयत्न नहीं किया था, इस कारण इस काल्पनिक महादेश के

संबंध में कुछ ज्ञात न हो सका था। इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए कुक ने दो जहाजों के साथ यात्रा प्रारम्भ की। उसके जहाज इंग्लैंड से चलकर हार्न अंतरीप तक पहुँचे। वहाँ से दक्षिण की ओर यात्रा प्रारम्भ हुई। जहाजों को बड़े बुरे मौसम का सामना करना पड़ा और कहीं भी भूमि न दिखाई पड़ा। जहाँ तहाँ उन्हें समुद्र में तैरते हुए भयंकर बर्फ के पर्वत वा आइसबर्ग दिखाई पड़े। इनमें एक की परिधि दो मील के लगभग थी। और आगे बढ़ने पर सारा मार्ग बर्फ से ढका हुआ दिखाई पड़ा और मौसम बहुत ख़राब हो चला, अतएव कुक ने लौटने का निश्चय किया। इसी यात्रा में यात्रियों ने दक्षिणी ध्रुव-प्रदेश में प्रकट होनेवाली मेरुप्रभा का अवलोकन किया। अन्त में ११७ दिन तक भूमि का कहीं भी दर्शन न कर न्यूज़ीलैंड तक जहाज़ पहुँच सके। यहाँ से प्रशान्त महासागर के टैहिटी और अन्य द्वीपों की यात्रा कर कुक एक ही जहाज के साथ फिर न्यूज़ीलैंड लौट आया। उस का दूसरा जहाज पृथक हो गया था।

कुक ने जाड़े का मौसिम समाप्त होने पर दुबारा दक्षिणी महादेश का पता लगाने का प्रयत्न किया। इस यात्रा में वह ७१° दक्षिण अक्षांश तक पहुँच सका परन्तु उसे सम्पूर्ण समुद्र बर्फ में जमा मिला। इस कारण उसे निश्चय हो गया कि यदि दक्षिण में कोई देश है तो वह अवश्य ही बर्फ से ढका हुआ और व्यर्थ है।

दूसरी यात्रा से लौटकर कुक ने प्रशान्त महासागर में एक द्वीप को देखा जिसका यहाँ पर उल्लेख करना असंगत न होगा।

इस द्वीप में, जिसका नाम ईस्टर द्वीप प्रसिद्ध हुआ, पत्थर की गढ़ी हुई विशेष प्रकार की वस्तुएँ थीं। वे वस्तुएँ क्या हैं इसका पता लगाने के लिए आधुनिक विज्ञान-वेत्ताओं ने बड़ा प्रयत्न किया है परन्तु वे कुछ भी ज्ञात न कर सके हैं। और वे अब भी संसार के लिए बड़ी जटिल पहेली हैं। उनकी संख्या ५०० से भी अधिक है। वे न तो मूर्तियाँ ही हैं और न कोई ऐसी वस्तु ज्ञात होती हैं जिसके लिए वे गढ़ी गई हैं। इन प्रस्तर-निर्मित वस्तुओं के निकट ही लगभग १०० भवन हैं जो पत्थर के बड़े २ ढोकों से बने हैं। उनमें एक विचित्र भाषा में खुदे हुए लेख हैं जिनका आज किसी को कुछ भी ज्ञान नहीं है। ईस्टर द्वीप एक ज्वाला मुखी के शिखर पर स्थित है। अनुमान होता है कि किसी समय वहाँ एक बड़ा महाद्वीप था जिसका ध्वंस हो जाने पर केवल उसका थोड़ा सा अवशेष रह गया है।

कुक ने ईस्टर द्वीप के पश्चात् अन्य कई द्वीपों का अन्वेषण करते हुए जाड़े को व्यतीत किया। ग्रीष्म ऋतु के आते ही उसने दक्षिणी महादेश की खोज में फिर तीसरी यात्रा करने का प्रयत्न किया। न्यूज़ीलैंड पहुँच कर उसने हार्न अंतरीप तक यात्रा करने का निश्चय किया। हार्न अंतरीप पहुँच कर उसने दक्षिण-पूर्व की ओर यात्रा प्रारम्भ की। इस यात्रा में उसे बर्फ़ से ढके हुए ऊँचे पर्वत-शिखर दिखाई पड़े। इन शिखरों पर ठोस बर्फ़ जमी हुई थी जहाँ से बर्फ़ के बड़े बड़े टुकड़े तोप छूटने के समान शब्द करते हुए टूटकर नीचे आते थे। इस भूखंड का नाम न्यू जार्जिया

रक्खा गया। इस द्वीपके पश्चात् दूसरा बर्फ से ढका भूखंड मिला जिसका नाम सैंडविच देश रक्खा गया। इसे देखकर कुछ नहीं ज्ञात हो सका कि यह कोई द्वीप-समूह था वा दक्षिणी ध्रुव के महाद्वीप का भाग था परन्तु चारों ओर प्रचुर राशि में बर्फ देख-कर उसने यह अनुमान किया कि दक्षिणी महाद्वीप का वास्तव में अस्तित्व है।

इस प्रकार दूसरी यात्रा में कुक ने तीन वर्ष व्यतीत कर स्पष्ट कर दिया कि दक्षिणी महादेश कोई धन सम्पन्न वा हराभरा देश नहीं हो सकता। इस यात्रा को समाप्त कर कुक जुलाई सन १७७५ ई० में इंग्लैंड लौट सका।

कुक की तीसरी और अन्तिम यात्रा एक विशेष ही उद्देश्य से हुई थी। यह उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी तट का अन्वेषण कर निश्चित रूप से पता लगाना था कि उस महाद्वीप के उत्तर होकर अटलांटिक महासागर में पहुँचने का कोई मार्ग है वा नहीं। इस उद्देश्य से उसने सन् १७७६ ई० में दो जहाजों के साथ यात्रा प्रारम्भ की। पहले वह प्रशान्त महासागर में टैहिटी द्वीप में पहुँचा। वहाँ से हवाई द्वीप के उत्तर-पश्चिम होते हुए उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी तट पर पहुँचा। तट पर बैंकूवर द्वीप में उसने जहाजों की मरम्मत करवाई और फिर अलास्का के किनारे किनारे चलकर एशिया और अमेरिका को पृथक करने वाली बेरिंग जलप्रणाली को पार किया जिसे बेरिंग ने खोज निकाला था।

कुक ने अमेरिका के उत्तरी तट पर यात्रा करते हुए उसे पूर्व की

मुड़ते देखा, परन्तु उसे अटलांटिक महासागर तक पहुँचने की आशा न दिखाई पड़ी। समुद्र बर्फ से जमा हुआ था। कुक ने मार्ग बन्द देखकर हवाई द्वीप लौट जाने का विचार किया जहाँ से फिर अच्छा अवसर देखकर अपनी यात्रा प्रारम्भ कर सके।

हवाई द्वीप में एज किम्वदन्ती प्रचलित थी कि वहाँ पहले कोई देवता रहते थे और वे फिर कभी आने के लिए कहकर वहाँ से चले गए थे। वहाँ के निवासियों ने अंग्रेज़ों को देवता समझ बड़ा स्वागत किया। इस द्वीप से इतनी प्रतिष्ठा पाकर कुक के जहाज द्वीप को छोड़कर अन्यत्र जाने लगे, परन्तु तूफान के कारण एक जहाज का मस्तूल विशेष ध्वंस हो गया, इस कारण उसकी मरम्मत के लिए द्वीप के तट पर आना पड़ा। इसबार वहाँ के मूल निवासियों ने सन्देह करना प्रारम्भ किया कि ये देवता नहीं हैं। फलतः उनका सत्कार न हुआ और एक छोटी नाव लूट ली गई तथा एक डोंगी चोरी चली गई। इसके लिए कुक ने मूल निवासियों को दंड देने का विचार किया। पहले उसने उनके शासक को बन्दी कर लेने के लिए धोखे से अपने जहाज पर निमंत्रित किया परन्तु वह न आ सका। फिर नौ हथियारबन्द साथियों के साथ कुक एक नाव पर तट पर गया।

इसी समय कुक की एक नाव पर के आदमी ने एक गोली चलाई जिससे वहाँ वालों के एक सरदार की मृत्यु हो गई। इस पर मूल निवासियों में बड़ा जोश फैला। कुक के आदमी तट पर बन्दूक लिए तैयार खड़े थे, परन्तु कुक ने शान्ति स्थापित हो जाने

की आशा कर उन्हें गोली चलाने की आज्ञा न दी। इतने ही में मूल निवासियों ने अकस्मात् आक्रमण कर दिया और कुक के साथी भागने को विवश हुए। अंग्रेजों के पास पुराने ढंग की बंदूक थीं जिसमें दुबारा गोली भरने में देर लगती थी। इसलिए आक्रामकों ने उनमें से चार को तट पर ही समाप्त कर दिया। कुक के शेष साथी नाव पर पहुँच गए, परन्तु वह तट पर ही था। वह भी नाव पर पहुँच जाने की आशा से आगे बढ़ ही रहा था कि पीछे से किसी मूल निवासी ने उसके सिर पर पत्थर के एक हथियार का ऐसा प्रहार किया कि वह वहीं मूर्छित हो कर गिर गया। उसकी मूर्छा छूटने के पूर्व ही एक दूसरे ने उसकी गर्दन में पीछे से कटार भोंक दी। कुक ने उठने का प्रयत्न किया परन्तु पानी में गिर पड़ा। इतने में अन्य आक्रामकों ने उस पर आक्रमण कर उसका अंत कर दिया।

इस प्रकार कुक की हृदयद्रावक मृत्यु हुई। उसके शव को मूल निवासियों ने टुकड़े टुकड़े काट दिया। अंग्रेजों ने बड़ी कठिनाई से शव का कुछ अंश छीनकर उसे समुद्र में प्रवाहित किया।

१९-ध्रुव-प्रदेशों की यात्रायें



गोलिक अन्वेषण के इतिहास में आधुनिक युग की ध्रुव प्रदेशों की यात्रायें बड़ी ही भीषण और लोमहर्षण हैं। जिन प्रदेशों में चारों ओर हिम का ही साम्राज्य होने पर जीव-जन्तुओं वा पेड़-पौधों का चिह्न मात्र भी नहीं, उन स्थानों का भी अन्वेषण करने के लिए जिन वीर अन्वेषकों ने बरबस संकटों का आवाहन कर अपने अभूतपूर्व साहस का परिचय दिया, उसे सुनकर कौन ऐसा निर्जीव व्यक्ति है जिसकी नसों में एक बार खून उबल न पड़े, एकबार उसमें अपूर्व साहस का संचार न हो जाय। यथार्थ में वीरता और साहस की ऐसी कथायें ही मनुष्य को भीषण से भीषण कृत्यों में हाथ लगाने के लिए उसमें असाधारण बल पैदा कर देती हैं।

ईसा की सोलहवीं शताब्दी में उत्तरी महासागर में योरप से पूर्व या पश्चिम की ओर चलकर हडसन, बैफिन आदि अन्वेषकों ने एशियाई देशों तक पहुँचने का जो उद्योग प्रारम्भ किया था उसमें सफलता न मिल सकी थी। परन्तु उनके असफल होने पर भी उनके अभिलषित मार्ग ढूंढ़ निकालने की इच्छा लोगों के हृदय में स्थान बनाये रही। इसी उत्कट अभिलाषा ने अन्वेषकों को १९

वीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक बार फिर उस ओर आकर्षित किया। अतएव कनाडा के पूर्व-स्थित समुद्र से एशिया और उत्तरी अमेरिका महाद्वीप को पृथक् करनेवाले बेरिंग जलडमरूमध्य तक उत्तर सागर के मार्ग पहुँचने के लिए अन्वेषकों ने फिर प्रयत्न करना आरम्भ किया।

इन प्रयत्नों के फल स्वरूप कनाडा के उत्तर से बेरिंग जलडमरूमध्य तक यद्यपि किसी जहाज को समुद्र-मार्ग से यात्रा करने का अवसर न मिल सका तथापि समुद्र-मार्ग का ज्ञान हो सका। इन यात्राओं में वीर अन्वेषकों ने अपने अपूर्व साहस और त्याग का जैसा परिचय दिया वह अन्वेषणजगत में सर्वथा अनुपमेय है।

इस समुद्री मार्ग की खोज करनेवाले अन्वेषकों में रास, पैरी और फैंकलिन विशेष प्रसिद्ध हैं। रास और पैरी ने सन् १८१८ ई० में इस की खोज के लिए यात्रा प्रारम्भ की। ये लोग ग्रीनलैंड और बैफिन लैंड के मध्य स्थित बैफिन की खाड़ी के उत्तरी सिरे तक पहुंचे। वहाँ से बर्फीले समुद्र को पार करते हुए वे पश्चिम की ओर लंकास्टर के मुहाने तक पहुँचे। परन्तु उस मुहाने में ३० मील यात्रा कर ही रास लौट आया। दूसरे वर्ष पैरी ने लंकास्टर का मुहाना पार कर पश्चिम में मेलविल द्वीप तक यात्रा की। मार्ग में बहुत अधिक बर्फ जमी हुई मिली और जहाज चलाना कठिन था किन्तु किसी तरह उसने जहाज को आगे बढ़ाया। किसी तरह वह एक बर्फ-रहित गहरे समुद्र में पहुँच सका परन्तु और अधिक आगे बढ़ने पर एक बड़ी ही विचित्र बात दिखाई पड़ी।

उसके दिशासूचक यंत्र की चुम्बक की सुई काम न देने लगी और वह गतिहीन हो गई।

इस समय जाड़े का आगमन हो रहा था और बर्फ अधिक जमती जा रही थी, लेकिन पैरी ने यात्रा को जारी ही रक्खा। अन्त में मार्ग बिल्कुल बन्द हो जाने पर मेलविल द्वीप की एक खाड़ी में जाड़े के उपयुक्त डेरा बनाकर ठहरने का विचार किया गया परन्तु उस खाड़ी के पूर्व दो मील तक पानी के ऊपर सात इंच मोटी बर्फ जम गई थी। इसलिए खाड़ी में जहाज पहुँचाने के लिए इसे निरंतर तीन दिन तक लगे रहकर आरों से चीरने में सफलता मिल सकी। किसी तरह तट तक पहुच कर डरा डाला गया।

वहाँ पर इतनी अधिक शीत का सामना करना पड़ा कि बाहर आने पर यात्रियों का अंग गलने लगता। एक बार एक आदमी भूल से बिना दस्ताना पहने ही बाहर निकली। इसलिए उसका हाथ गलने लगा। जब उसने अपना हाथ पानी में डाला तो तुरन्त ही सब पानी उसके हाथ के चारों ओर जम गया। इस तरह उसकी उँगलियाँ गल गईं जिन्हें काटकर अलग कर देना पड़ा। किसी तरह जाड़ा समाप्त होते ही पैरो ने फिर पश्चिम की ओर यात्रा प्रारम्भ की, परन्तु कुछ दिनों तक यात्रा करने के बाद ही समुद्र बिल्कुल जमा हुआ मिला। इसलिए उसे लौट आना पड़ा।

सन् १८२१ ई० में पैरी फिर यात्रा के लिए रवाना हुआ, परन्तु

इस बार उसने बैफिन की खाड़ी और लंकास्टर का मुहाना छोड़ कर हडसन की खाड़ी से पश्चिम की ओर जाने का प्रयत्न किया। हडसन की खाड़ी के उत्तरी भाग में बैफिन लैंड और मेलविल प्रायद्वीप के बीच एक जलप्रणाली मिल सकी लेकिन बर्फ जमे होने से उसको पार करना कठिन था। पैरी इसी मार्ग में दो वर्ष तक पड़ा रहा लेकिन वह मुहाना पार न कर सका। दूसरे वर्ष इतना अधिक जाड़ा पड़ा कि गर्मी आने पर भी उसका जहाज बर्फ में ही फँसा रहा और १० दिन बड़ी मिहनत कर बर्फ के चीरने से मार्ग बन सका। इस तरह मार्ग ढूंढ़ने में असफल होकर पैरी इंगलैंड लौट गया। इस यात्रा में उसके साथ के पाँच यात्रियों की मृत्यु हुई थी।

जिस समय पैरी इस यात्रा के लिए निकला था उसी समय इंग्लैंड की सरकार ने जोन फ्रैंकलिन नाम के अन्वेषक को इसलिए भेजा था कि हडसन की खाड़ी से स्थल-मार्ग द्वारा उत्तरी महासागर के तट तक पहुँचे और वहाँ से पूर्व की ओर चलकर तट का अनुसंधान करे जिससे सम्भवतः पूर्व की ओर समुद्र-मार्ग से आता हुआ पैरी उससे मिल जाय और अभीष्ट मार्ग निकल आवे। उन दिनों कनाडा के उत्तरी समुद्र-तट पर केवल दो स्थानों तक ही अन्वेषक पहुँच सके थे। एक तो सन् १७८९ ई० में एलेकज़ेंडर मेकेंज़ी नदी के मुहाने तक पहुच सका था और दूसरे हीर्न नामक व्यक्ति सन् १७७१ ई० में कापरमाइन नदी के मुहाने तक पहुँचा था। फ्रैंकलिन को कापरमाइन नदी के मुहाने तक

पहुँच कर पूर्व की ओर समुद्र-तट का पता लगाना था।

फ्रैंकलिन के साथ डा० रिचार्डसन, बैक और हूड आदि कई व्यक्ति थे। कुल यात्री सन् १८१९ ई० के मई महीने में इंगलड से चलकर हडसन की खाड़ी के पश्चिमी तट पर यार्क फैक्टरी नाम के स्थान पर पहुँचे। वहाँ से सैकड़ों मील तक स्थल मार्ग से यात्रा कर सब यात्री बड़ी कठिनाई से कापरमाइन नदी के मुहाने के समीप पहुँच सके। वहाँ पर बहुत से डेरे बनाये गये और उस जगह का नाम फोर्ट इंटरप्राइज़ रक्खा गया। वहीं पर जाड़े का मौसम बिताया गया वहाँ पर इतनी अधिक सर्दी पड़ी कि पेड़ों की छाल जम गई और उनकी लकड़ी इतनी कड़ी हो गई कि उनपर टांगा चलाने से टांगा ही टूट जाता वहाँ पर पहले तो खाद्य पदार्थ प्रचुर मात्रा में था किन्तु पीछे उसका अभाव हो गया और उसे लाने के लिये बैक एक भीतरी भाग में बहुत दूर स्थित नगर में भेजा गया। बैक को कड़ी सर्दी का सामना करते हुए और कई दिन बिना खाए रहते १००० मील की यात्रा पूरी करनी पड़ी। किसी प्रकार चार मास में वह लौट सका।

जून सन् १८२१ ई० में फ्रैंकलिन ने दो डोंगियों पर पूर्व की ओर ५५० मील तक तट का अनुसंधान किया। मार्ग में बर्फ के ऐसे बहते टुकड़े मिलते थे जिनसे डोंगियाँ टकरा कर तुरन्त नष्ट-भ्रष्ट हो सकती थीं। किसी तरह इतनी यात्रा कर लेने पर भोजन की कमी के कारण फोर्ट इंटरप्राइज तक शीघ्र पहुँचने के लिए स्थल-मार्ग का अनुसरण किया गया, परन्तु मार्ग में बड़े जोरों की आँधी

उठी और सब खाद्य पदार्थ नष्ट हो गया। किसी तरह प्राण-रक्षा कर डेरे तक लौट सकने के लिए यात्रियों को जूते का चमड़ा आहार बनाना पड़ा। किसी तरह पाँच दिन तक निराहार रहते हुए भोजन मिलने की आशा में सभी यात्री फोर्ट इंटरप्राइज़ में पहुँचे, परन्तु वहाँ उजाड़ पड़ा था और कोई खाने की चीज़ नहीं थी। इस तरह भूख से मरणासन्न यात्रियों ने निराश होकर कुछ हिरन की सूखी हड्डियों और चमड़े का शोरबा बनाकर भोजन किया। इसी तरह मृत्यु को सिर पर नाचते देख सब लोगों ने जीने की आशा छोड़ दी। ऐसे संकट के समय बैक कुछ खाद्य पदार्थ लेकर पहुँचा जिसकी खोज में वह गया था। इस तरह प्राण-रक्षा कर यात्रा समाप्त की गई। इस यात्रा में पाँच हज़ार मील से भी अधिक चलकर भीषण संकटों का सामना करता हुआ फ्रैंकलिन यार्क फैक्टरी लौट सका।

पहली यात्रा में इतनी मुसीबतों का सामना होते हुए भी फ्रैंकलिन ने कनाडा के उत्तरी तट का अन्वेषण-कार्य न छोड़ा और सन् १८२८ ई० में डा० रिचार्डसन और बैक के साथ दुबारा रवाना हुआ। इस बार मेकेंज़ी नदी के मार्ग सभी यात्री उत्तरी सागर के तट पर पहुँचे। वहाँ से फ्रैंकलिन पश्चिम की ओर और बैक के साथ रिचार्डसन पूर्व की ओर अन्वेषण करने निकले। इस तरह कुल १००० मील तक तट का अन्वेषण हो सका। पूर्व में रिचार्डसन कापरमाइन नदी के मुहाने तक जा सका और पश्चिम में फ्रैंकलिन १५०° पश्चिम देशान्तर तक पहुँचा। इंग्लैंड की सर-

कार ने उसी समय एक जहाज बेरिंग का मुहाना होकर इस ओर भेजा था जो फ्रैंकलिन को मिल सके। वह जहाज १६०° पश्चिम देशान्तर तक आ सका था परन्तु ये दोनों जहाज मिल न सके।

इस तरह अन्वेषकों के प्रयत्न से कनाडा के उत्तरी समुद्र-तट का अन्वेषण कर उत्तर के मार्ग से ही अटलांटिक महासागर से बेरिंग के मुहाने वा प्रशान्त महासागर तक का लगभग पूरा समुद्र-मार्ग ज्ञात हो सका था। लेकिन किसी जहाज को यह पूरा मार्ग तै करने का अवसर नहीं मिला था। बीच में लंकास्टर के मुहाने से कुछ दक्षिण तक के समुद्र-मार्ग का अन्वेषण करना शेष रह गया था। इस थोड़े अंश का ज्ञान प्राप्त कर बहुत दिनों से अभिलषित मार्ग का ज्ञान पूर्ण करने की अभिलाषा से फ्रैंक-लिन ने सन् १८४५ ई० में एकबार फिर यात्रा करने का साहस किया। उस समय उसकी अवस्था ६० वर्ष की हो गई थी, परन्तु उसने अपने साहस का एक अपूर्व उदाहरण उपस्थित करने के लिए यात्रा की, परन्तु इसी यात्रा में ही सभी यात्रियों के साथ उसकी आत्मा इस लोक से चल बसी और अधिक दिनों तक लोगों को उसके संबंध में कुछ भी समाचार न मिल सका। जब इन यात्रियों की खोज करने के लिए कई जहाज अधिक दिनों तक पता लगाते रहे तो उनके बर्फ में गल जाने का समाचार मिल सका।

इन यात्रियों की मृत्यु-कथा बहुत ही करुणापूर्ण है। ये दो जहाजों पर तीन वर्ष तक के लिए खाद्य पदार्थ ले कर चले थे।

बैफिन की खाड़ी से चलकर लंकास्टर के मुहाने के आगे अज्ञात मार्ग के अन्वेषण में इनका जहाज बर्फ में जम गया और दो वर्ष तक वहाँ से न निकल सका। धीरे धीरे सभी खाद्य पदार्थ न्यून हो चला। तीसरे वर्ष भी ग्रीष्म ऋतु आने पर बर्फ न गलने से यात्रियों ने जहाज छोड़कर दक्षिण की ओर बर्फ पर यात्रा की और एक ऐसे स्थान तक पहुँच सके जहाँ तक अन्य अन्वेषक उत्तरी सागर के तट का अन्वेषण करते पहुँच सके थे। इस प्रकार अब सम्पूर्ण जल-मार्ग का पूरा ज्ञान हो सका परन्तु इस संवाद को संसार को सुनाने का अवसर मिलने के पूर्व ही वे सब बर्फ में गलकर मर गये।

इस प्रकार अब तक तो एशिया तक के उत्तरी मार्ग की खोज में ही अन्वेषक शीत प्रदेश की भीषण यात्राओं में संलग्न होते रहे। परन्तु इन शीत खंडों में यात्रा कर बहुत कुछ अनुभव प्राप्त कर लेने के पश्चात् लोगों का ध्यान उत्तरी ध्रुव के अन्वेषण की ओर आकृष्ट हुआ। उत्तरी ध्रुव के अन्वेषण से कितनी ही वैज्ञानिक गवेषणाओं में सहायता मिल सकती थी और बहुत स बातों का यथार्थ ज्ञान हो सकता था, अतएव अब तक की गई व्यापारिक खोजों के स्थानों पर अब वैज्ञानिक अन्वेषण करने के लिए अन्वेषक सामने आये। इन अन्वेषकों में पियरी और नैन्सन उत्तरी ध्रुव के अन्वेषण में बड़े ही विख्यात हैं।

नैन्सन नार्वे का रहने वाला था। इसने ध्रुव प्रदेश के संबंध की बहुत सी बातों का अध्ययन करने में बहुत समय लगाया था।

इसने सन् १८८८ में ग्रीनलैंड द्वीप को पूर्वी तट से पश्चिमी तट तक पार किया था जो बड़ी भीषण यात्रा थी। इसने इसके पश्चात् ध्रुव प्रदेश की हवाओं और समुद्री धाराओं का कई वर्ष अध्ययन कर यह ज्ञात किया था कि बेरिंग द्वीप के उत्तर से ध्रुव की ओर सदा बर्फ खिसका करती है और ध्रुव होकर फिर ग्रीनलैंड का तट और स्पिट्सबर्ग होती हुई अटलांटिक महासागर में पहुँचती है। इसलिए उसने यह नतीजा निकाला कि यदि कोई जहाज बर्फ के खिसकाव में पड़े तो वह धीरे धीरे उत्तरी ध्रुव होता हुआ अटलांटिक महासागर में पहुँच जायगा। इस तरह यात्रा करने वाले जहाज को कई वर्ष तक बर्फ में फँसे रहना पड़ेगा। इसलिए नैन्सन ने एक ऐसे जहाज का निर्माण किया जो बर्फ में फँसने पर उसके दबाब से फट न जाय बल्कि ऊपर उठ जाय और बर्फ के ऊपर ठहरा रहे।

इस तरह अपनी योजना पूरी कर नैन्सन ने नार्वे से जून सन् १८९३ ई० में पूर्व की ओर यात्रा की। उसके साथ कुल १३ आदमी थे। नोवाज़ेम्बिया पहुँचने पर साइबेरिया के कुछ चुने हुए कुत्ते जहाज पर चढ़ा लिए गए। बीच में आवश्यकता पड़ने पर बर्फ के ऊपर यात्रा करने के लिए बेपहिये की स्लेजगाड़ी काम में लानी पड़ती। उनको खींचने के लिये कुत्ते ही उपयुक्त थे। जहाज आगे चलकर चिल्यूस्किन अंतरीप तक पहुँचा। वहाँ पर खिसकने वाली बर्फ मिली। उसमें जहाज डाल दिया गया। नैन्सन के अनुमानानुसार जहाज बर्फ के दबाव से उसके ऊपर रहकर उसके साथ खिसकने लगा।

जब १५ महीने तक बर्फ के साथ खिसकते रहकर जहाज ८३ उत्तर अक्षांश तक पहुँचा तो यह अनुमान किया गया कि वह ध्रुव के मार्ग से दूर जा रहा है। इसलिए नैन्सन ने एक आदमी को साथ लेकर स्लेज गाड़ी पर ध्रुव तक यात्रा करने का निश्चय किया। वहाँ से जहाज छोड़ने पर फिर उसके मिलने की आशा नहीं थी, क्योंकि ध्रुव से लौटने के समय तक वह खिसक कर बहुत ही दूर पहुँच जाता। इसलिए उसने जहाज की बिलकुल आशा छोड़ कर कुत्तों से खींची जाने वाली स्लेज पर ध्रुव की ओर यात्रा प्रारम्भ की। परन्तु ८८½° उत्तर अक्षांश पर ध्रुव से २०० मील की दूरी पर पहुँचने पर बर्फ के ऊँचे ऊँचे टीले मिलने लगे इसलिए विवश होकर यात्रा स्थगित कर देनी पड़ी।

नैन्सन की लौटानी यात्रा विशेष कष्टदायक थी। मार्ग में स्थान स्थान पर बर्फ के गल जाने से नाले बन गए थे। उनको नैन्सन ने एस्किमो लोगों की नावों पर पार किया जिन्हें वह साथ लिए था। कभी कभी ध्रुव प्रदेश में रहने वाले भालू उनपर आक्रमण करते। किसी प्रकार उन्होंने यात्रा कर एक द्वीपों का समूह देखा और वहीं पर जाड़े की ऋतु व्यतीत की। गर्मी आने पर वे फिर दक्षिण की ओर बढ़ने लगे और एक मास पश्चात् वे फ्रांज जोजेफ लैंड में पहुँचे। वहाँ पर उन लोगों को लेने के लिए एक जहाज प्रतीक्षा करता हुआ मिला। इसे देख उन्हें बहुत ही प्रसन्नता हुई और वे नार्वे लौट गए। कुछ समय बाद नैन्सन के विचारानुसार उसका जहाज भी शेष यात्रियों के साथ बर्फ में बहता हुआ

अटलांटिक महासागर में पहुँचा और नावें लौट सका।

नैन्सन की ध्रुव यात्रा अधूरी रह जाने के पश्चात् अमेरिका के पियरी नाम के अन्वेषक ने ध्रुव तक पहुँचने में सफलता प्राप्त की। पियरी ने कनाडा के उत्तर ध्रुव प्रदेश में स्थित द्वीपों और ग्रीनलैंड की भीतरी यात्रा करने में अधिक समय व्यतीत किया था। उसी ने ग्रीनलैंड के उत्तरी सिरे तक पहले पहल पहुँच कर ग्रीनलैंड का एक द्वीप होना सिद्ध किया था। इन शीत खंड की यात्राओं में उसे बहुत कष्ट भोगना पड़ा था, परन्तु उसने इनका अनुमान होते हुए भी उत्तरी ध्रुव तक पहुँचने का निश्चय किया।

इसके लिए पियरी एक जहाज पर सब सामान और साथियों को लेकर ग्रीनलैंड के उत्तर-पश्चिम में स्थित ग्रांटलैंड की कोलंबिया अंतरीप के समीप पहुँचा। वहाँ से फरवरी सन् १९०९ ई० में यात्रियों का दल स्लेजगाड़ियों पर रवाना किया गया। पहले एक दल इसलिए भेजा गया कि बर्फ की चट्टानों को काट काट कर कुछ दूर तक मार्ग साफ़ कर दे। इसके बाद पहली मार्च सन् १९०९ ई० को पियरी ने २४ आदमी, १९ स्लेजगाड़ी और १३३ कुत्तों के साथ यात्रा प्रारम्भ की। आगे बढ़ने पर उसने थोड़े थोड़े समय बाद दल के कमज़ोर आदमियों और कुत्तों को धीरे धीरे लौटाना प्रारम्भ किया। अन्त में ध्रुव से १३० मील की दूरी पर पहुँचने पर उसके साथ एक नौकर और चार एस्किमो ही रह गए। इन के साथ उसने तेज़ी से यात्रा प्रारम्भ कर दी। ज्यों ज्यों आगे बढ़ने पर ध्रुव निकट आता जा रहा था त्यों त्यों यात्रियों के हृदय

में एक विचित्र भाव उत्पन्न होता जा रहा था। अन्त में ६ अप्रेल १९३० को वह ध्रुव तक पहुँच गया जहाँ चारों ओर बर्फ ही बर्फ दिखाई पड़ती थी। वहाँ से विजय के उल्लास में पियरी ने ४४ मील प्रतिदिन की तीव्र गति से लौटानी यात्रा की। जब ध्रुव तक पहुँचने के चार मास पश्चात् पियरी के अमेरिका में लौट आने पर लोगों ने यह सम्वाद सुना तो चारों ओर बड़ी सनसनी फैल गई और पियरी की चारों ओर धूम मच गई।

उत्तरी ध्रुव के अन्वेषण की अपेक्षा दक्षिणी ध्रुव के अन्वेषण की कथा बहुत ही रोमांचकारी है। इसकी खोज में कप्तान स्काट, ओट्स और उनके साथियों ने बड़ी वीरता से प्राण-त्याग किया था। उनकी कथा बहुत करुणापूर्ण है।

जिस समय दक्षिण की ओर किसी महाद्वीप के होने की कल्पना के कारण कप्तान कुक ने सन् १७७३ ई० में पहले पहल दक्षिणी ध्रुव-वृत्त को पार किया था उस समय उसने वहाँ की अत्यधिक शीत और बर्फ से भरे समुद्र को देखकर घोषणा की थी कि यात्रा की भीषणता के कारण कोई भी यात्री उसके पहुँचे स्थान से अधिक दक्षिण न जा सकेगा और धुर दक्षिण में स्थित भूखण्ड का कभी भी अन्वेषण न हो सकेगा। परन्तु कुक की यह बात निराधार सिद्ध करने के लिए वीर अन्वेषकों ने बीड़ा उठाया और वे कुक से भी कुछ अधिक दक्षिण पहुँच सके। सन् १८१९ ई० में कप्तान विलियम स्मिथ ने अधिक दक्षिण आकर दक्षिणी शटलैंड द्वीप की खोज की; सन् १८२२ ई० में कप्तान वेडेल ७४° अंश

दक्षिण अक्षांश तक पहुँच सका और सन् १८३१ ई० में कप्तान विस्को ने एन्डरडीलैंड, एडीलेड द्वीप तथा ग्राहमलैंड का पता लगाया।

सन् १८४१ ई० में इंग्लैंड की सरकार ने जेम्स रास की अध्यक्षता में दो जहाज दक्षिणी ध्रुव-प्रदेश की भूमि का पता लगाने भेजा। रास दक्षिणी महाद्वीप के तट तक पहुँचा और दो भीषण ज्वालामुखी पर्वतों को देखा जिनका नाम उसके जहाजों के नाम पर रक्खा गया। इसी तरह १९०० ई० तक भिन्न २ देश के अन्वेषक दक्षिणी ध्रुव-प्रदेश में पहुँचते रहे जिन्होंने ध्रुव प्रदेश में स्थित भूमि के तट और समुद्र का अन्वेषण किया परन्तु १९०० ई० के बाद दक्षिण ध्रुव तक पहुँचने के लिए अन्वेषकों ने प्रयत्न करना आरम्भ किया।

इस उद्देश्य से सन् १९०१ ई० में कप्तान स्काट ने सब कुछ तैयारी कर एक जहाज पर यात्रा की। उसके साथ एक दूसरा अन्वेषक लेफ्टिनेंट शैकेल्टन और ४० आदमी थे। समुद्र की यात्रा पार कर लेने पर इनका जहाज दक्षिणी महादेश के तट तक पहुँचा और वहाँ से बर्फ के ऊपर यात्रा प्रारम्भ हुई। इस यात्रा में दक्षिणी ध्रुव प्रदेश के अन्वेषण की कठिनाइयों का अनुभव हुआ। उत्तरी ध्रुव की खोज में अन्वेषकों ने जिस बर्फ के ऊपर यात्रा की थी वह पानी के ऊपर जमी थी, ध्रुव के समीप कहीं भूमि न थी, परन्तु दक्षिणी ध्रुव स्थल-खंड में था और उसके चारों ओर भूमि के ऊपर बर्फ जमी थी। यह भूमि समतल नहीं थी, प्रत्युत एक बहुत

ऊँचे पठार के रूप में की। इसलिए ध्रुव तक पहुँचने के लिए इस ऊँचे पठार पर यात्रा करने की आवश्यकता थी। इस पठार में सर्वत्र बर्फ जमी थी और उसमें ऊँची ऊँची पहाड़ियों के अतिरिक्त स्थान पर बड़े बड़े दरार फटे थे। इस बर्फ के दरारों में गिरने पर मनुष्य का कहीं ठिकाना नहीं लग सकता था। ये दक्षिणी ध्रुव के अन्वेषकों के लिए बहुत ही भयावह और संकट में डालने वाले थे। इन संकटों के अतिरिक्त निरन्तर बहनेवाली बर्फ की आँधियाँ भी बहुत ही विपत्ति में डालने वाली थीं। ऐसी भीषण स्थिति का अनुभव कर स्काट का दल ८२½° दक्षिण अक्षांश तक पहुँच कर लौट आया।

सन् १९०८ ई० में लेफ्टिनेंट शैकेल्टन ने दक्षिणी ध्रुव तक पहुँचने का प्रयत्न किया। वह न्यूज़ीलैंड द्वीप होकर दक्षिणी महा-देश के तट तक पहुँचा। उसने यात्रा में काम देने के लिए मंचू-रिया के कुछ टट्टुओं को साथ ले लिया था, लेकिन इनमें से कई शीघ्र ही मर गए। किसी तरह तीन और आदमियों के साथ शैके ल्टन ने ध्रुव तक पहुँचने के लिए बर्फ पर यात्रा प्रारंभ की। उसके साथ स्लेजगाड़ियाँ और चार टट्टू थे। मार्ग पहाड़ी भूमि में हो कर था जिसमें तीन टट्टू थककर बेकार हो गए। चौथा टट्टू भी एक ग्लेशियर की चढ़ाई में एक बर्फ के दरार में गिर कर मर गया। इधर भोजन की सामग्री भी कम हो रही थी किन्तु चारों यात्री आगे ही बढ़ते गये। अन्त में जब वे ८८° दक्षिण अक्षांश तक पहुँच कर ध्रुव से केवल ९७ मील की दूरी पर रह गये तो

भोजन की बिल्कुल कमी से उन्हें विवश होकर लौटना पड़ा।

शैकेल्टन की इसी यात्रा के पश्चात् स्काट ने फिर दक्षिणी ध्रुव तक पहुँचने का प्रयत्न किया जिसमें उसके सब साथियों के साथ उसकी मृत्यु होगई। इस यात्रा की कथा बड़ी हृदय-द्रावक है। स्काट ने इस यात्रा के लिए बहुत अच्छी तरह तैयारी कर चुने हुए आदमियों के साथ जून सन् १९१० ई० में इंग्लैण्ड से यात्रा प्रारम्भ की। उसके साथ टट्टू, कुत्ते और इंजिन से चलनेवाली स्लेज गाड़ियाँ थीं।

२९ नवंबर को जहाज न्यूजीलैंड से चला और दक्षिणी महादेश के तट तक पहुँच सका। वहाँ पर जाड़े में ठहरने के लिए डेरे बनाए गये। स्काट ने यात्रा की सुविधा के लिए जाड़े के इस निवासस्थान से १४४ मील दक्षिण की ओर एक स्थान में भोजन की सामग्री संचित करने के लिए डेरा बनाया। उसमें खाद्य पदार्थ रख दिए गये जो अवसर आने पर काम दे सकें। वहाँ से जाड़े के निवासस्थान तक लौटते हुए मार्ग में एक बर्फ के दरार में कुत्तों का एक दल गिर गया जिसे बड़ी कठिनाई से ऊपर खींचा जा सका। एक दूसरे अवसर पर कुछ आदमियों और चार खच्चरों के साथ एक बर्फ की चट्टान खिसककर समुद्र में बहने लगी। उस पर के आदमी किसी तरह बचाये जा सके।

अक्टूबर सन् १९११ ई० में वास्तविक यात्रा के लिए सब कुछ तैयारी पूरी हो गई। यात्रा प्रारम्भ करने के पूर्व कुछ आदमियों की टोलियाँ आगे के मार्ग में स्थान स्थान पर खाद्य भंडार सुर-

चित रख देने के लिए भेजी गईं। जब यात्रा प्रारम्भ हुई तो आगे बढ़ते जाने पर थोड़े थोड़े आदमियों की टोलियाँ पीछे लौटाई जाने लगीं। जब ध्रुव से केवल १४५ मील दूर ७८° दक्षिण अक्षांश तक पहुँचा जा सका तो स्काट के साथ चार ही और यात्री रह गए जिनके नाम डा० विलसन, कप्तान ओट्स, लेफ्टिनेंट बावर्स और सीमेन इवांस थे।

किन्तु जिस स्थान की खोज कर संसार में गौरव प्राप्त करने की आशा से स्काट ने यह यात्रा प्रारम्भ की थी उस स्थान तक एक दूसरा अन्वेषक उसके एक मास पूर्व ही पहुँच चुका था। इसका नाम कप्तान एमंडसेन था। कप्तान एमंडसेन नार्वे देश का रहनेवाला था। इसने पहले अगस्त सन् १९१० ई० में उत्तरी ध्रुव का अन्वेषण करने की तैयारी की थी, परन्तु उसी समय जब उत्तरी ध्रुव तक पियरी के पहुँचने का उसे सम्वाद मिला तो उसने वह विचार छोड़ दक्षिणी ध्रुव का अन्वेषक होने का गौरव प्राप्त करने के लिए तुरन्त दक्षिण की ओर यात्रा की। उसके साथ नैन्सन का वह जहाज था जिस पर नैन्सन ने उत्तरी ध्रुव तक पहुँचने का प्रयत्न किया था। उस जहाज के साथ एमंडसेन दो वर्ष के लिए खाद्य पदार्थ लेकर दक्षिणी महादेश के तट पर पहुँचा। वहाँ उसने स्काट के जाड़े के निवास-स्थान से ४०० मील पूर्व की ओर अपना जाड़े का निवासस्थान बनाया। वहाँ से आगे के मार्ग में आठ आदमियों ने निरंतर परिश्रम कर पाँच २ मील की दूरी पर खाद्य-भंडार एकत्रित कर दिया जिससे कुसमय किसी भी ऋतु में

काम निकल सके।

इस तरह तैयारी कर ८ सितम्बर सन् १९११ ई० को चार साथियों को लेकर एमंडसेन ने दक्षिणी ध्रुव की यात्रा प्रारम्भ की, परन्तु कुछ ही दूर जाने पर बहुत अधिक पाले के कारण उसे लौटना पड़ा। फिर उसने १० नवंबर को यात्रा प्रारम्भ की। मार्ग में ऋतु अनुकूल रही, परन्तु अधिक आगे पहुँचने पर निरंतर पाँच दिन तक बर्फ की आँधी चलती रही। आगे की ओर सर्दी इतनी अधिक हुई कि यात्रियों का मुँह और हाथ गलने लगा। अन्त में किसी तरह १४ दिसम्बर सन् १९११ ई० को एमंडसेन अपने साथियों को लेकर दक्षिणी ध्रुव तक पहुँचा। वहाँ पर एक काला झंडा गाड़कर वह सकुशल लौट सका।

जब स्काट अपने चार साथियों के साथ १७ जनवरी १९१२ ई० को दक्षिणी ध्रुव तक पहुँचा तो उसे एक दूसरे ही अन्वेषक के वहाँ पहले ही पहुँच जाने पर बड़ा ही शोक हुआ। इस प्रकार हाथ से सफलता छीनी जाते देख उसका हृदय बहुत ही क्षुब्ध हुआ। किसी प्रकार उसने लौटानी यात्रा प्रारम्भ की, परन्तु यही यात्रा उन सभी यात्रियों की अंतिम घड़ी थी। लौटते हुए उन्हें बड़ी भीषण स्थिति का सामना करना पड़ा। उनका भोजन समाप्त हो चला था। और इसी समय इवांस बीमार पड़ा जिससे यात्रा तेज न की जा सकी। अन्त में १७ फरवरी को मार्ग में ही इवांस की मृत्यु हो गई। इवांस के पश्चात् कप्तान ओट्

बीमार पड़ा। उसे पाला मार गया था। ऐसी दशा में भी किसी तरह वह पैदल चलता रहा, परन्तु अपनी वजह से अपने साथियों की यात्रा में अधिक विलम्ब होते देख बर्फ की आँधी बहते समय वह एक दिन पड़ाव से बाहर चला गया और मृत्यु का बलपूर्वक आवाहन कर अपने साथियों को आगे बढ़ने के लिए निश्चिन्त किया। कप्तान ओट्स का यह आत्मत्याग अद्वितीय था जिसकी समता अन्यत्र कहीं भी नहीं मिल सकती।

इस प्रकार अपने दो साथियों से बिछुड़ कर शेष यात्री आगे बढ़ कर ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ से उनका पहले का एकत्रित खाद्य-भंडार केवल ११ मील ही था। उनके पास उस समय केवल दो दिन की खाद्य सामग्री रह गयी थी परन्तु इसी समय बड़े जोरों की बर्फ की आँधी बहने लगी और वे प्रचुर खाद्य-भंडार के इतना निकट होते हुए भी वहाँ तक न पहुँच सके। निदान मार्ग में डाले डेरे में ही उन सब की मृत्यु हो गई। स्काट ने मरते समय तक अपनी यात्रा का पूरा विवरण लिखना जारी रक्खा था।

जब इस दुर्घटना के पश्चात् स्काट के विषय में लोगों को कुछ भी ज्ञात न हो सका तो उसकी खोज करने के लिए लोग भेजे गये। उन्होंने स्काट और उसके साथियों की शव डेरे में पाई। स्काट का लिखा विवरण भी मिल सका परन्तु बाहर बहुत खोज करनेपर भी कप्तान ओट्स की शव का पता न चल सका। बहुत अधिक बर्फ गिरने के कारण वह कहीं नीचे दब गई थी।

छात्रहितकारी पुस्तकमाला प्रयाग

की

प्रकाशित पुस्तकें

१–ईश्वरीय बोध

परमहंस स्वामी रामकृष्णजी के उपदेश भारत में ही नहीं, तमाम संसार में प्रसिद्ध हैं। उन्हीं के उपदेशों का यह संग्रह है। श्रीरामकृष्णजी ने ऐसे मनोरंजक और सरल, सब की समझ में आने लायक बातों में प्रत्येक मनुष्य को ज्ञान कराया है कि कुछ कहते नहीं बनता। प्रत्येक उपदेश पढ़ते समय ऐसा मालूम होता है मानों कोई कहानी पढ़ रहे हैं, छोड़ने को जी नहीं चाहता परन्तु वही उपदेश हमारे जीवन को ईश्वर के एक हाथ और निकट पहुँचा देता है। व्यावहारिक बातों द्वारा भगवान का बोध करा देना स्वामी रामकृष्णजी का ही कार्य था। सचमुच मनुष्य ऐसी पुस्तक पढ़कर अपने को बहुत उच्च बना लेता है। परिवर्द्धित संस्करण का मूल्य सिर्फ़ ॥।)

२–सफलता की कुंजी

अमेरिका, जापान आदि देशों में वेदान्त का डंका पीटने वाले तथा भारतमाता का मुख उज्ज्वल करनेवाले स्वामी रामतीर्थ को सभी जानते हैं। यह पुस्तक उन्हीं स्वामी जी के Secret of Success नामक अपूर्व लेख का अनुवाद है पुस्तक क्या है जीवन से निराश और विमुख पुरुषों के लिये संजीवनी और नवयुवकों के लिये संसार में प्रवेश करने की वास्तविक कुंजी है। यदि आप अपना जीवन सुखमय बनाना चाहते हैं

और शांतिसरोवर में गोता लगाना चाहते हैं तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें। मूल्य ।)

३–मनुष्य जीवन की उपयोगिता

मनुष्य जीवन किस प्रकार सुखमय बनाया जा सकता है? इसकी उत्तम से उत्तम रीति आप जानना चाहते हैं तो एक बार इसे पढ़ जाइये। कितने सरल उपायों से पूर्ण सुखमय जीवन हो जाता है, यह आपको इसी पुस्तक से मालूम होगा। यह मूल पुस्तक तिब्बत के प्राचीन पुस्तकालय में थी, जहाँ के एक चीनी ने इसका अनुवाद चीनी भाषा में किया फिर इसका योरुप की अंगरेज़ी, फ्रेंच, जर्मन आदि भाषाओं में अनुवाद हुए। आज दिन योरुप की भाषाओं में इसके हज़ारों संस्करण हो चुके हैं। हिन्दी अनुवाद का तीसरा संस्करण अभी हाल ही में छपा है। डेढ़ सौ पेज की पुस्तक का मूल्य ॥=)

४–भारत के दशरत्न

यह जीवनियों का संग्रह है। इसमें भीष्मपितामह, श्रीकृष्ण, पृथ्वीराज, महाराणा प्रतापसिंह, समर्थ रामदास, श्रीशिवाजी, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ के जीवनचरित्र बड़ी खूबी के साथ लिखे गये हैं। मूल्य ।–)

५–ब्रह्मचर्य ही जीवन है

को पढ़ कर सच्चरितपुरुष तो सदैव के लिये नाश से बचता ही है किन्तु पापात्मा भी निःसंशय पुण्यात्मा बन जाता है। व्यभिचारी भी ब्रह्मचारी बन जाता है। दुर्बल भी सिंह तथा दुरात्मा भी साधु हो जाता है। जो पुरुष अपने को औषधियों का दास बनाकर भी जीवन-लाभ नहीं कर सका है, उसे इस

पुस्तक में बताये सरल नियमों का पालन कर अनन्त जीवन प्राप्त करना चाहिये। कोई भी ऐसा गृहस्थ या भारतपुत्र न होना चाहिये जिसके पास ऐसी उपयोगी पुस्तक की एक प्रति न हो। थोड़े ही समय में इसके चार संस्करण हो चुके हैं। मूल्य ॥।)

६—वीर राजपूत

यह उपन्यास एक ऐतिहासिक घटना को लेकर बड़े मनोरंजक ढंग से लिखा गया है। यदि राजपूताने के वीर राजपूतों के सच्चे पराक्रम और शूरवीरता की एक अपूर्व झलक आपको देखनी है, यदि आप यह जानना चाहते हैं कि एक सच्चा सदाचारी वीर पुरुष कैसे अपने उच्च जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है तो उपन्यास को एक बार अवश्य पढ़ जाइये। मूल्य १)

७—हम सौ वर्ष कैसे जीवें

भारतवर्ष में औषधालयों और औषधियों की कमी नहीं, फिर भी यहाँ के मनुष्यों की आयु अन्य देशों की अपेक्षा सबसे कम क्यों है? औषधियों का विशेष प्रचार न होते हुये भी हमारे पूर्वजों की आयु सैकड़ों वर्ष की कैसे होती थी? एक मात्र कारण यही है कि हमारे नित्य के खाने पीने, उठने बैठने के व्यवहारों में बर्तने योग्य कुछ ऐसे नियम हैं जिन्हें हम भूल गये हैं **"हम सौ वर्ष कैसे जीवें?"** को पढ़कर उसके अनुसार चलने से मनुष्य सुखों का भोग करता हुआ १०० वर्ष तक जीवित रह सकता है। हिन्दी में इस विषय की आज तक कोई भी ऐसी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई। मू० १)

८—महात्मा टाल्स्टाय की वैज्ञानिक कहानियाँ

विज्ञान की शिक्षा देने वाली तथा अत्यन्त मनोरंजक पुस्तक। मूल्य ।)

९—वीरों की सच्ची कहानियाँ

यदि आपको अपने प्राचीन भारत के गौरव का ध्यान है, यदि आप वीर और बहादुर बनना चाहते हैं, तो इसे पढ़िये। इसमें अपने पुरुषाओं की सच्ची वीरतापूर्ण यश-गाथायें पढ़कर आपका हृदय फड़क उठेगा, नसों में वीर रस प्रवाहित होने लगेगा, पुरुषाओं के गौरव का रक्त उबलने लगेगा। स्कूल में बालकों को इतिहास पढ़ाने में अपने पुरुषाओं की वीरतापूर्ण घटनाएं नहीं पढ़ाई जातीं। विदेशी पुरुषों की प्रशंसा के ही पाठ पढ़ाये जाते हैं। आवश्यकता है देश का कोई बालक ऐसे समय इस पुस्तक को पढ़ने से न चूके। मूल्य केवल ॥।)

१०—आहुतियाँ

यह एक बिल्कुल नये प्रकार की नयी पुस्तक है। देश और धर्म पर बलिदान होने वाले वीर किस प्रकार हँसते हँसते मृत्यु का आवाहन करते हैं? उनकी आत्मायें क्यों इतनी प्रबल हो जाती हैं? वे मर कर भी कैसे जीवन का पाठ पढ़ाते हैं? इत्यादि दिल फड़ाकानेवाली कहानियाँ पढ़नी हों तो "आहुतियाँ" आज ही मँगा लीजिये। मूल्य केवल ॥।)

११—जगमगाते हीरे

प्रत्येक आर्य संतान के पढ़ने लायक यह एक ही नयी पुस्तक है। यदि रहस्यमयी, मनोरंजक, दिल में गुदगुदी पैदा

करने वाली महापुरुषों की जीवन-घटनाएं पढ़नी हैं, यदि छोटी छोटी बातों से ही महापुरुष बनने की जरा भी अभिलाषा दिल में है तो एक बार अवश्य इस सचित्र पुस्तक को आप खुद पढ़िये और अपनी स्त्री को पढ़ाइये। मूल्य केवल १)

१२–पढ़ो और हँसो

विषय जानने के लिये पुस्तक का नाम ही काफी है! एक एक लाइन पढ़िये और लोट पोट होते जाइये। आप पुस्तक अलग अकेले में पढ़ेंगे; पर दूसरे लोग समझेंगे कि आज किससे यह क़हक़हा हो रहा है। पुस्तक की तारीफ यह है कि पूरी मनोरंजक होते हुए भी अश्लीलता का कहीं नाम नहीं। यदि शिक्षाप्रद मनोरंजक पुस्तक पढ़नी है तो इसे पढ़िये। मूल्य केवल ॥)

१३–कुसुम-कुञ्ज

कविवर गुरु भक्त सिंह 'भक्त' कृत कमनीय कविताओं का संग्रह है। ये कवितायें अपने ढंग की एक ही हैं। मूल्य ।=)

१४–चारुचिन्तामणि कोष

इस पुस्तक में श्री गोस्वामी तुलसीदासजी के सब ग्रन्थों से उन भागों का संग्रह किया गया है जिनका सम्बन्ध श्री रामनाम से है। संग्रहकर्त्ता राम के अत्यन्त भक्त श्री जयरामदास जी हैं। पुस्तक अपने ढंग की एक ही है। मूल्य ।-)

१५–मनुष्य-शरीर की श्रेष्ठता

यह शरीर-विज्ञान पर अपने ढंग की एकही पुस्तक है। इस पुस्तक में शरीर के भिन्न २ अंग और उनके कार्य सरल

भाषा में बतलाए गये हैं। थोड़ी सी असावधानी तथा जानकारी के अभाव से हम अपने अंगों को किस प्रकार विकृत कर डालते हैं, यह बात इस छोटी सी पुस्तक पढ़ने से भलीभाँति ज्ञात हो जायगी। मू० ।=)

१६–अनमोलरत्न

इसमें भारत के महात्मा बुद्ध से लेकर महाराजा रणजीत सिंह तक के १७ महापुरुषों के संक्षिप्त जीवनचरित बड़े ही मनो-रंजक ढंग से लिखे गये हैं। इस एक ही पुस्तक के पढ़ने से आप उन महात्माओं के संबन्ध की बहुत सी बातें जान जायँगे। यह पुस्तक 'गागर में सागर' वाली कहावत चरितार्थ करती है। ढाई सौ पृष्ठ के लगभग पुस्तक का मूल्य १।)

१७–एकान्त बास

नवयुवकोपयोगी कहानियों का अनुपम संग्रह है। एक २ कहानी से युवकों को सदाचार, सत्यता निर्भीकता, त्याग आदि अनेक गुणों की शिक्षा मिलती है। कहीं पर अश्लीलता का नाम मात्र तक नहीं है। इसे स्त्री, पुरुष, बच्चे, बुड्ढे सभी निस्संकोच भाव से पढ़ सकते हैं। हम दावे के साथ कहते हैं कि कहानियों का ऐसा पवित्र, निर्दोष साथ ही रुचिकर संग्रह अभी तक हिन्दी में नहीं निकला है। अधिक क्या कहें, इसकी उत्तमत्ता पढ़ने से ही ज्ञात होगी। टाइटिल पेज पर सुन्दर चित्र से भूषित डेढ़ सौ से अधिक पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य ।||)

१८–पृथ्वी के अन्वेषण की कथायें

इस पुस्तक में संसार के सब देशों की खोज करने वाले वीर अन्वेषकों की भीषण और रोमांचकारी यात्रायें बड़ी सजीव

और रोचक भाषा में लिखी हैं। इनको पढ़ कर प्रत्येक नवयुवक का हृदय फड़क उठता है। इस विषय पर हिन्दी में पुस्तकों का सर्वथा अभाव है। इस पुस्तक को अपनाना प्रत्येक साहित्य-प्रेमी का कर्त्तव्य है। लगभग २०० पृष्ठों की इतनी सुन्दर पुस्तक का मूल्य १)

१६–फल उनके गुण तथा उपयोग।

पुस्तक का विषय नाम ही से प्रकट है। अभी तक इस विषय पर हिन्दी में क्या भारत की किसी भाषा में भी कोई पुस्तक आज तक प्रकाशित नहीं हुई। यह बात निर्विवाद है कि फलाहार सब से उत्तम और निर्दोष आहार है। महात्मा गांधी फल पर ही रहते हैं। भारतीय ऋषि फलाहार ही से हज़ारों वर्ष ज़ीवित रहते थे, रोग उनके पास नहीं फटकता था। परन्तु आज तक कोई ऐसी पुस्तक न थी जिससे लोग यह जान सकें कि कौन फल लाभकारी हैं और कौन विकार करने वाले बहुत से रोग ऐसे हैं जो फलों के सेवन से ही अच्छे होजाते हैं। अस्तु आप अपने तन मन और आत्मा को नीरोग रखना चाहें तो यह पुस्तक अवश्य पढ़ें। ब्रह्मचर्य की रक्षा करने वालों को तो यह पुस्तक अवश्य ही पढ़नी चाहिये। पुस्तक के लेखक ऐसे महानुभाव हैं जिन्होंने वर्षों के अनुभव, अध्ययन तथा अनुशीलन के बाद लिखी है। लगभग दो सौ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल १) सजिल्द का मूल्य १।=)



छात्रहितकारी पुस्तकमाला

के

स्थायी ग्राहक बनने के नियम।

(१) प्रत्येक सज्जन ॥) पेशगी जमा कर इस ग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहक बन सकते हैं। उन्हें प्रत्येक प्रकाशित पुस्तक पर एक चौथाई कमीशन दिया जाता है।

(२) पहिले की प्रकाशित पुस्तकों का लेना अथवा न लेना ग्राहकों की इच्छा पर निर्भर है। परन्तु भविष्य में प्रकाशित होने वाली पुस्तकों का लेना आवश्यक होगा। यदि सूचना पाते ही एक सप्ताह के अन्दर हमें सूचित कर देंगे तो वह पुस्तक न भेजी जायगी।

(३) जो सज्जन सूचना पाके वी० पी० जाने पर उसे लौटा देंगे उनका नाम स्थायी ग्राहकों की श्रेणी से काट दिया जायगा। हमारे यहाँ अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें भी मिल सकेंगी। हम अपने स्थायी ग्राहकों को अन्य प्रकाशकों की ५) या इससे अधिक की पुस्तकों पर फ़ी रुपया एक आना कमीशन देते हैं। वृहत् सूचीपत्र मंगाकर देखिये।

मैनेजर–छात्रहितकारी पुस्तकमाला,
दारागंज-प्रयाग

